अरफ़ात किरण

क़ुर्बानी की हक़ीक़त

"आज मुसलमानों ने अल्लाह के लिए क़ुर्बानी का मतलब सिर्फ़ यह समझ लिया है कि हर साल हज कर आया करो, वलीमे और अक़ीक़े की शानदार दावत कर दिया करो और बक़राईद में किसी जानवर की क़ुर्बानी कर लिया करो और उसके बाद फिर साल भर चैन की बंसी बजाया करो। याद रखिये अल्लाह की मदद का वादा बकरे की क़ुर्बानी के साथ नहीं, बल्कि आदत की क़ुर्बानी और ख़्वाहिश की क़ुर्बानी के साथ जुड़ा हुआ है। अल्लाह को कच्चे या भुने गोश्त की तलब नहीं, उसके पास दिल व अदब का लिहाज़, ख़ुदा का ख़ौफ़ और ख़ुदा की मुहब्बत और ख़ुदा के लिए नफ़्स व माल की क़ुर्बानी पहुंचती है और उसी में उसकी रहमत को मुतवज्जा करने की ताक़त है। क़ुर्बानी की हक़ीक़त यह है कि आदमी अपने इरादे, अपनी ख़्वाहिश, अपनी आदत और अपने मिज़ाज के गले पर छुरी फेरे और इस क़िस्म के हर मोड़ पर ख़ुदा के डर और आख़िरत में जवाब देने के ख़्याल से बुराई से अपना हाथ रोक ले।"

मौलाना मुहम्मदुल हसनी रह०

मर्कजुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

July 2022

हिन्दुस्तानी मुसलमानों का सियासी शऊर

हिन्दुस्तानी मुसलमानों में सियासी शऊर पैदा करने, सियासी मसाएल और अवामिल को समझने और ग़ौर करने और हालात के मुताबिक़ सर्द या गर्म रवैये का ख़ूंगर बनाने का काम मुख़्तस्र लफ़्ज़ों में सियासी तरबियत का काम कभी न हो सका, इसका कुदरती नतीजा यह है कि जिन हालात में जोश व ख़रोश और हंगामा खेज़ी मुफ़ीद हो उनमें तो वह अब भी बहुत अच्छा रोल अदा कर सकते हैं बशर्ते कि क़यादत सही और क़ाबिले एतमाद हो, लेकिन दूसरे हालात में सिवाए इसके कि उनके अक्सर अवाम व ख़्वास कुछ जली–कटी बातों से दिल की भड़ास निकालें या उनके कुछ क़ायदीन सिर्फ़ आजिज़ाना दरख़्वास्तें अरबाबें हुकूमत की बारगाह में पेश करें, कोई और मुफ़ीद और नतीजाख़ेज़ काम नहीं होता और न लोगों को इसके इमकानात नज़र आते हैं।

दूसरी अहम चीज़ जिसको मुसलमानों की सियासी पसमांदगी में बड़ा दख़ल है। मुसलमानों के दौलतमंद तबक़े की यह कैफ़ियत है कि वह सियासत से किसी क़िस्म का ताल्लुक़ नहीं रखना चाहता है और उसकी अहमियत को बिल्कुल नहीं समझता है। इसलिए इस मैदान में अपना फ़र्ज़ वह बिल्कुल अदा नहीं करता। किस क़द्र हैरत की बात है कि इसी मुल्क में रहने वाली वह क़ौम जो सारी अक़्लियतों की हिफ़ाज़त के लिए काफ़ी है। जिसके दौलतमंद क्योंकि सियासत की अहमियत और उसके हमागीर और दूररस असरात को जानते–समझते हैं, इसलिए इतनी मज़बूत और महफ़ूज़ अक्सरियत में होने के बावजूद वह करोड़ों रूपये सिर्फ़ प्रेस पर ख़र्च करते हैं।

लेकिन हमारे मुसलमान सरमायादार इज्तिमाई तौर पर भी आज तक एक अंग्रेज़ी रोज़नामा का इंतिज़ाम नहीं कर सके जबकि इस गई गुज़री हालत में भी इनमें ऐसे लोग मौजूद हैं जो अगर इस कमी को पूरा करने का फ़ैसला कर लें तो एक आला दर्जे का रोज़नामा मुम्बई से, एक कलकत्ता से, एक मद्रास से और एक देहली से निकल सकता है। लेकिन सियासत से बेताल्लुक़ी बल्कि इस बाब में बेशऊरी का हाल यह है कि जो लोग बेटों–बेटियों की शादी में एक–एक लाख या उससे भी ज़्यादा ख़र्च कर देते हैं, उनसे अगर कहा भी जाए तो वह इस मद में एक हज़ार रुप्या देने को आमादा न होंगे। और यह हाल सिर्फ़ बेपढ़े या कम तालीमयाफ़्ता सेठों ही का नहीं है, हमारे तालीम याफ़्ता दौलतमंदो का हाल भी इस मामले में क़रीब–क़रीब ही है।

मुसलमानों की सियासी पसमांदगी के ज़ाहिरी असबाब में और भी बाज़ दाख़िली कमज़ोरियों और ग़लतियों का ज़िक्र किया जा सकता है, लेकिन हमारे नज़दीक सबसे बड़ा दख़ल इन दो बातों का है, इसलिए सबसे पहली ज़रूरत तो है सियासी तरबियत की और हालात के मुताबिक़ मिज़ाज बनाने की। यह काम उर्दू अख़बारात भी अच्छी–ख़ासी हद तक कर सकते हैं और दूसरी ज़रूरत है इस राह में मुसलमान दौलतमंदो की फ़र्ज़ शनासी और सही तौर पर अपने फ़र्ज़ की अदायगी की और इन सब बातों से पहले ज़रूरत है ग़ैरमुख़्तलिफ़ चीज़ों में उनके मुख़्तलिफ़ अनासिर की बाहम इज्तिमा और तआऊन और इश्तिराके अमल की।

मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी (रह०)

(अलफ़ुरक़ानः 3/1384 हिजरी)

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:७ जुलाई 2022 ई0 वर्ष:१४

संरक्षक: हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुबहान नारवुदा नदवी

महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक

मो0 नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

मुद्रक

मो0 हसन नदवी

क़ुर्बानी के आदाब

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

जिस शख़्स के पास क़ुर्बानी का जानवर हो और वह उसको ज़िबह करने का इरादा रखता हो, तो जब ज़िलहिज्जा का चाँद निकल आए तो वह अपने बालों और नाख़ून को न काटे, यहाँ तक कि क़ुर्बानी कर ले

सही मुस्लिम: 1977

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू0पी0.229001

प्रति अंक 15रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू0

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

मुहब्बत समझते हैं हम ...

मुहम्मद अहमद साहब प्रतापगढ़ी (रह0)

मिला जिसको सोज़े निहाने मुहब्बत
वही हो गया राज़दाने मुहब्बत

उन्हीं से है रोशन जहाने मुहब्बत
जो क़िस्मत से हैं कश्तगाने मुहब्बत

करम की नज़र बाग़बाने मुहब्बत
दिखा दे मुझे गुलिस्ताने मुहब्बत

नज़र में है सूद विज़याने मुहब्बत
रहें क्यों न हम कामराने मुहब्बत

कोई उनसे पूछे तो शाने मुहब्बत
जो हैं कोहे आतिश फ़िशाने मुहब्बत

हमा वक़्त ख़ंदां हमा वक़्त रक़्सां
कमीने मुहब्बत, मकाने मुहब्बत

कभी फ़र्श पर हैं कभी अर्श पर हैं
यह शाने मुहब्बत यह आने मुहब्बत

है हर वक़्त एक कैफ़ व मस्ती का आलम
जहां से अलग है जहाने मुहब्बत

मुहब्बत मुहब्बत ज़बां पर है जारी
हमारी ज़बां है ज़बाने मुहब्बत

मुहब्बत समझते हैं हम जिसको अहमद
हक़ीक़त में वह है गुमाने मुहब्बत

इस अंक में:

नया तूफ़ान और उसका मुक़ाबला.....3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

जुल्म की टहनी कभी फलती नहीं.....4

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी

हज़रत मूसा व ख़िज़र (अलैहिस्सलाम) का सफ़र.....6

हज़रत मौलाना सैय्यद राबे हसनी नदवी

सच्चाई क्या है?.....7

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

निकाह के चन्द मसाएल (2).....9

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

हज व उमरा – इस्लामी पहचान.....11

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

ईदुल अज़्हा के मुतफ़र्रिक़ मसले.....13

हज़रत मौलाना अली मियाँ नदवी (रह0).....16

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

दुनिया में बाक़ी रहने का क़ानून.....19

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

नया तूफ़ान और उसका मुक़ाबला

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नद्वी

पूरी दुनिया इस वक़्त तबाही के दहाने पर खड़ी है। खुदग़र्ज़ी का एक मानसून है जो पूरी दुनिया पर छाया हुआ है। यह खुदगर्ज़ी इन्फ़िरादी भी है और इज्तिमाई भी। इन्सानियत की फ़िक्र करने वाले अन्क़ा हो रहे हैं। कोई सिर्फ़ अपनी ज़ात में मगन है, तो किसी को अपनी पार्टी की फ़िक्र है। मुल्क की फ़िक्र करने वाले और उसकी सालिमियत और इत्तिहाद के बारे में सोचने वाले कम होते जा रहे हैं। यह सूरतेहाल इन्तिहाई तश्वीशनाक है। हर आने वाला कल ख़तरों के बादल ला रहा है। ज़रूरत उन जियालों की है जो इन्सानियत की हिफ़ाज़त के लिए और मुल्क व मिल्लत के लिए क़ुर्बानी का जज़्बा रखते हों और वह बेख़तर उस आग को बुझाने के लिए कूद पड़ें, जो घर–घर लगी हुई है और आम लोग मीठी नींद सो रहे हैं। कोई उनको जगाने वाला नज़र नहीं आता। हालात तो ऐसे थे कि हर शख़्स निकल पड़ता और उससे जो बन पड़ता वह करता।

क़िस्सा मशहूर है कि किसी जंगल में आग लगी, उसको बुझाने के लिए लोग दौड़ पड़े, एक चिड़िया भी अपनी चोंच में पानी लेकर निकली। किसी ने पूछा कि दो बूंद पानी से क्या होगा? वह बोली कि कल जब आग बुझाने वालों की फ़ेहरिस्त बनेगी तो उसमें मेरा भी नाम लिखा जाएगा।

एक ईमान वाले के लिए इससे बढ़कर क्या बात हो सकती है कि अल्लाह के क़रीबी बन्दों में उसका नाम लिखा जाए। बहुत से ज़हनों में यह बात आती है कि पानी सर से ऊंचा हो चुका है। हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि अब उम्मीदें टूट चुकी हैं। कोई पूछे इस्लाम जब आया तो कितने मानने वाले थे, उसकी दुश्मनी पर कितने लोग कमरबस्ता था। लेकिन यक़ीन रखने वालों ने जब सर–धड़ की बाज़ी लगा दी और इन्सानियत की डूबती हुई कश्ती को अपनी जान जोखिम में डालकर सहारा दिया, तो क्या कोई इसकी पेशीनगोई कर सकता है कि उस ज़ालिमाना माहौल का ख़ात्मा होगा, जहां औरत की हैसियत जानवरों की थी। वहीं हाल यह हुआ कि एक कमज़ोर औरत एक शहर से दूसरे शहर जाती है, दौलत उसके पास है, मगर कोई हाथ नहीं लगाता।

इस वक़्त फिर वह ज़माना जाहिलियत नये रंग व रूप में सामने है। नये असबाब व वसाएल ने उसको और ज़्यादा ताक़तवर बना दिया है, इसलिए तूफ़ाने के मुक़ाबले के लिए बड़े ईमानवाले और फ़हम रखने वाले दाइयों की ज़रूरत है। सबसे बढ़कर यह ज़िम्मेदारी हमारे उलमा की है। उनके पास शरीअत का निज़ाम और ज़िन्दगी का दस्तूर है। वह मैदाने अमल में आएं। एक तरफ़ वह ईमान वालों के ईमान को बचाने की फ़िक्र व तदबीर करें। दूसरी तरफ़ वह इन्सानियत की डोलती हुई कश्ती को पार लगाने की कोशिश करें

इस वक़्त इल्हाद व इरतदाद का एक तूफ़ान है। कोई शहर इससे ख़ाली नहीं। बल्कि उसकी तेज़ व तुन्द हवाओं से शायद ही कोई मोहल्ला बचा हो। उसको रोकने के लिए बड़े हौसले और बड़े ईमान की ज़रूरत है। बड़ी तदबीर व हिकमत की ज़रूरत है। एक–एक घर पर बल्कि एक–एक दिल पर दस्तक दी जाए। ईमान के तक़ाज़े समझाएं जाएं। नई नस्ल को ज़रूरी दीनी तालीम से आरास्ता किया जाए और उनको उन ख़तरों से आगाह किया जाए जो सर पर मंडला रहे हैं। किस तरह हम ग़ैरों का शिकार हो रहे हैं और कभी–कभी अनजाने में हम आला–ए–कार बन जाते हैं और अपनों ही को नुक़सान पहुंचाते हैं।

हमारी मस्जिदें हमारे लिए नूर का मीनार हैं। दीन के मराकिज़ हैं। वहां से इस्लाम की तालीम आम की जाए। मस्जिद से मुताल्लिक़ मोहल्लों में एक–एक घर के हालात मालूम किये जाएं। उनका सर्वे किया जाए और उनकी दीन व दुनिया की ज़रूरतों की फ़िक्र की जाए और उसके लिए मुताल्लक़ा हज़रात को तैयार करके उनसे काम लिए जाएं। जब मोहल्ले–मोहल्ले यह मेहनत होगी तो इंशाअल्लाह हालात बदलेंगे।

दूसरी बात यह है कि इस वक़्त इन्सान जिस तरह दरिन्दा बनता जा रहा है, इन्सानियत दम तोड़ रही है। कोई किसी की बात सुनने को तैयार नहीं। हर शख़्स को अपना मफ़ाद अज़ीज़ है। इस सूरतेहाल को बदलने की ज़रूरत है। सबसे बढ़कर यह काम मुसलमानों का है। उनके पास इन्सानियत के लिए पूरा पैग़ाम भी है और निज़ाम भी। हुक़ूक़ की जो बारीकियां और अख़लाक़ की जो बुलन्दियां इस्लाम में बतायी गयी हैं। वह एक अमानत है और मुसलमान इसके अमीन हैं। इन पर ज़िम्मेदारी है कि उसकी हिफ़ाज़त करें। उन पर अमल करके और उसके पैग़ाम को दुनिया में आम करे।

अगर हम मुसलमानों ने अपनी इस ज़िम्मेदारी को नहीं समझा तो ख़यानत करने वालों का अंजाम भी अच्छा नहीं होता।

ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

इन्सानियत के हाल व मुस्तक़बिल और सारे तमद्दुनी, मआशी, सियासी, हत्ता कि अख़लाक़ी और मज़हबी मसाएल का इन्हिसार और तमाम फ़लसफ़ों व अफ़कार व नज़रियात का दारोमदार तमामतर इस पर है कि इन्सान मौजूद और महफ़ूज़ है। उसको अपनी ज़िन्दगी की तरफ़ से इत्मिनान, इन्सानी ज़िन्दगी की क़द्र व क़ीमत का एहसास और उसके तक़द्दुस पर ग़ैर मुतज़लज़ल अक़ीदा है। इस अक़ीदे ने कि इन्सान की उस दुनिया की पैदाइश का मक़सूद और इस कायनात का सबसे बेशक़ीमत वजूद है। और उसके अन्दर बेहतर से बेहतर बनने की सलाहियत मौजूद है। दुनिया के ज़हीन तरीन, शरीफ़ तरीन और लायक़ तरीन इन्सानों को इन्सानों पर मेहनत सर्फ़ करने पर आमादा किया और उन्होंने उनकी ज़हनी सलाहियतो और उनके ज़हन व दिमाग़ के सोतों को छेड़ा और वह तमाम इस्लाही, तामीरी व तख़लीक़ी, इल्मी, अदबी, तमद्दहदुनी और रूहानी शाहकार वजूद में आए जिन पर क़दीम व जदीद दुनिया को फ़ख़्र है। तारीख़ के क़दीम तरीन दौर से लेकर हमारे ज़माने तक जिस चीज़ ने इन्सानियत की शमा लगातार जलाए रखी वह ख़ुदा की यह नेमत है कि अच्छे इन्सान इन्सान से मायूस नहीं हुए। उन्होंने उसको नाक़ाबिले इलाज मरीज़ और नाक़ाबिले सलाह हैवान नहीं समझा। वह कभी उसके वजूद से ऐसे मुतनफ्फ़िर नहीं हुए कि उसकी सूरत देखने तक के रवादार न हों। उन्होंने कभी उसके ज़िन्दा रहने का इस्तहक़ाक़ का इनकार नहीं किया। इन्सानियत का चिराग़ बे तेल–बत्ती के जल सकता है, वह हवा के तेज़ झोंकों और तूफान के थपेड़ों में रोशन रह सकता है और इन्सानियत की तारीख़ बताती है कि हिम्मतवालों और इन्सानियत का दर्द रखने वालों ने बरसों बेतेल–बत्ती के इन्सानियत का चिराग़ रोशन रखा। उन्होंने पेट पर पत्थर बांधकर और लगातार फ़ाक़ा करके जंगलों और बियाबानों, कड़ाके के जाड़ों की रातों और तपती हुई दोपहरियों में इन्सानियत की ख़िदमत की। उनमें से कोई चीज़ उनकी हिम्मत को तोड़ने और उनको उनके मुक़द्दस काम से रोकने के लिए काफ़ी न थी। उनकी न ख़त्म होने वाली क़ूव्वत मुक़ाबले का राज़ और उनकी हैरतअंगेज़ क़ूव्वते अमल की बुनियाद यह थी कि वह इन्सान को दस्ते क़ुदरत का शाहकार समझते थे। उनको इन्सान की फ़ितरते सलीम पर यक़ीन व एतमाद था। उनको यक़ीन था कि इन्सान के लिए बुराई आरज़ी और भलाई अस्ली और फ़ितरी है। उनको यक़ीन था कि वह इन्सान पर जो मेहनत करेंगे वह कभी न कभी रंग लाएगी। उनके अक़ीदे में इस बाग़ की हर कली को खिलना और हसीन बनना चाहिए था। आलमे इन्सानी में कोई चीज़ इससे ज़्यादा ख़तरनाक और तश्वीश अंगेज़ नहीं कि इन्सान इन्सान से नाउम्मीद हो जाए और उससे ज़्यादा अफ़सोसनाक बात यह है कि वह इस नफ़रत व यास के जुनून में बेज़ुबान औरतों और मासूम बच्चों पर दस्तदराज़ी करे और गुन्चों को खिलने और मुस्कराने से पहले ही मसल कर रख दे। तालीम व तरबियत हो या इस्लाह व तरक़्क़ी, मआशी ख़ुशहाली हो या सियासी इस्तहकाम यह नशेमन जिस शाख़ पर क़ायम है और हमेशा जिस शाख़ पर क़ायम रहेगा वह इन्सानी ज़िन्दगी के तहफ़्फ़ुज़ और अमन व अमान की फ़िज़ा है। इसलिए नशेमन को सजाने और बनाने के मंसूबों और उसकी तरबियत व तंज़ीम की बहसों से पहले इस शाख़ की हिफ़ाज़त ज़रूरी है।

बेगुनाह कमज़ोर बेबस और निहत्थे इन्सानों औरतों और बच्चों पर ज़ुल्म व दस्त दराज़ी चाहे वह किसी भी मज़हब व मिल्लत से ताल्लुक़ रखते हों और ख़्वाह यह अक़दाम किसी सही या ग़लत इश्तिआल की बिना पर या इन्तिक़ामी जज़्बे के मातहत हो वह अमल है जिसने बड़े–बड़े ताक़तवर तरक़्क़ी याफ़्ता वसीअ और ज़रखेज़ मुल्कों और सल्तनतों को बेचिराग़ और ताराज कर दिया है और तारीख़ में सिर्फ़ उनका नाम बाक़ी रह गया है। ख़ुदा के वजूद के बाद जिस हक़ीक़त पर तमाम मज़ाहिब फ़िरक़ों और मकातिबे ख़्याल का इत्तिफ़ाक़ है

वह यह है कि ज़ुल्म ख़्वाह किसी से सरज़द हो बड़ा गुनाह, महापाप और मुल्कों और क़ौमों के हक़ में सम्मेक़ातिल है और इसका नतीजा देर या सवेर निकल कर रहता है और इसकी मौजूदगी में कोई मुल्क या क़ौम, ख़्वाह उसके पास कैसे ही क़ुदरती वसाएल, जंगी ताक़त, अददी कसरत, शानदार तारीख़ और इल्म व अदब और फ़लसफ़े के ख़ज़ाने हो फल–फूल नहीं सकती।

मुझे इजाज़त दीजिए कि मैं इस मौक़े पर उर्दू का वह सीधा–साधा शेर पढ़ूं जो बचपन में हमें याद कराया जाता था और हमारी तख़्तियों पर लिखा जाता था और वह अपनी सादगी के बावजूद अब भी इस क़ाबिल है कि ऐवाने हुकूमत और कस्रे अदालत से लेकर लौहे दिल तक पर लिखा जाए।

ज़ुल्म की टहनी कभी फलती नहीं
नाव काग़ज़ की सदा चलती नहीं।

इसलिए हर ज़माने में मुल्क के सच्चे बहीख़्वाहों और साहिबे ज़मीर व दानिशवर इन्सानों ने जिनकी ख़ुदाके बेलाग़ कानून और तारीखें इन्सानी के लगातार तर्जुबों और मुतवातिर शहादतों पर नज़र थी, अपने मुल्क व मुआशरे के लिए हर अन्दररूनी व बैरूनी ख़तरे से बढ़कर इसको ख़तरा समझा और अपने मुल्क के अन्दर ज़ुल्म करने वालों का डटकर मुक़ाबला किया। ज़ुल्म से रोकने और ज़ुल्म की आग न फैलने देने के लिए उन्होंने अपने जान की बाज़ी लगा दी और इसको मुल्क की सबसे बड़ी ख़िदमत और हक़ीक़ी हुब्बुलवतनी क़रार दिया इसलिए कि वह जानते थे कि अन्दर का ज़ुल्म व ज़्यादती बाहर वालों के ज़ुल्म व ज़्यादती और उनकी ज़ालिमाना हुकूमत से ज़्यादा मुल्क के हक़ में तबाहकुन और ख़तरनाक है। बैरूनी ज़ुल्म की सूरत में मुल्क और क़ौम मज़लूम होती हैं। ख़ुदा की मदद, अच्छे इन्सानों की दुआएं, और मज़लूमों की आहें उसके साथ जुड़ती हैं और अन्दरूनी ज़ुल्म की सूरत में वह मुल्म सदा ख़ुदा की मदद से महरूम और ख़ुद मज़लूमों की आहों और दुखे दिलों की कराहों का निशाना बनता है जिनकी तासीर पर तमाम मज़ाहिब अख़लाक़ी फ़लसफ़ों और सेहतमंद व सालेह अदब व शायरी का इत्तिफ़ाक़ है और जिन्होंने कभी–कभी बिला इम्तियाज मज़हब व मिल्लत सदियों की वसीअ और मुस्तहकम सल्तनतों का चिराग़ गुल कर दिया और उन तहज़ीबों और तमद्दुनों को हमेशा के लिए मौत की नींद सुला दिया जिनका किसी ज़माने में दुनिया में डंका बजता था और जिसकी मिसालें इस माद्दी और मशीनी दौर में भी ख़ानदानों और महलों बिरादरियों और बस्तियों के महदूद दायरे में अब भी इल्म में आती रहती हैं और ख़ुदा की यह लाठी जिसमें आवाज़ नहीं हक़ीक़त बीं निगाहों को अब भी दुनिया की इन बड़ी ताक़तों के जाह व जलाल के मरकज़ों में भी अपना काम करती हुई नज़र आ जाती है, जो अपने सामने किसी की हक़ीक़त नहीं समझते।

मुल्क की ताक़त का हक़ीक़ी सरचश्मा और जीने और फलने–फूलने के लिए सबसे बड़ा सहारा ऐसे हक़ गो और बेलाग इन्सानों का वजूद है जो बड़े से बड़े नाज़ुक़ और जज़्बाती मौक़े पर ज़ुल्म को ज़ुल्म, नाइंसाफ़ी को नाइंसाफ़ी और ग़लती को ग़लती कह सकते हैं। अगर आप वाक़ई किसी क़ौम की बेदारी और उसकी ज़िन्दगी की सलाहियतों को जांचना चाहते हैं और यह अंदाज़ा करना चाहते हैं कि वह क़ौम या मुल्क इन्सानियत व अख़लाक़ और इल्म व फ़न की अमानत की हिफ़ाज़त की कहां तक अहल है तो यह देखिये कि इसमें कितने ऐसे अफ़राद पाए जाते हैं जो तनक़ीद के मौक़े पर अपने–पराए की तमीज़ न करते हों, जो सरीह ग़लती के मौक़े पर बड़ी से बड़ी अक्सरियत और बड़ी से बड़ी ताक़तवर हुकूमत को बरमला टोक देते हैं। जो मज़लूमों और कमज़ोरों के लिए सीना सिपर हो जाते हों और बिगड़े हुए हालात में ऐश के ऐवानों को छोड़कर दीवानों की तरह फिरने लगते हों और किसी मलामत करने वाले की परवाह न करते हो, जिनको आइन्दा के फ़वाएद और वक़्त के मुसालेह सच्ची बात कहने से बाज़ न रखते हों, जो हक़ की हिमायत और ऐलान में अपनी क़ौम का मातूब बनने को अपनी क़ौम का महबूब बनने पर हज़ार बार तरजीह देते हों। जब सारे मुल्क में ज़्यादती हक़तलफ़ी जांबरदारी और मस्लहत परस्ती की हवा चल रही हो तो वह अपना खाना–पीना भूल जाएं और हालात को दुरुस्त करने के लिए कोई कोशिश उठा न रखें, जो वक़्त के मसले सामने तमाम मसाएल को बालाए ताक़ रख दे, हर तरह के इख़्तिलाफ़ात को भुला दे, बिला तमीज़ क़ौमियत व मिल्लते इन्सानी जान व आबरू की हिफ़ाज़त के लिए जान की बाज़ी लगा दे। अगर ऐसे अफ़राद पाए जाएं तो क़ौम को मायूस व हरासां होने की ज़रूरत नहीं।

हज़रत मूसा व ख़िज़्र (अलैहिस्सलाम) का सफ़र

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) से फ़रमाया कि हमारा एक बन्दा ऐसा है कि जिसको हमने तुमसे ज़्यादा इल्म दिया है। चुनान्चे हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने यह जानने की कोशिश की कि आख़िर वह इल्म कौन सा है जो अल्लाह ने हमें भी अता नहीं किया, जबकि उसने हमको सारे इन्सानों का नबी बनाकर भेजा है और हम लोगों को वह इल्म पहुंचाते हैं जो अल्लाह ने हमें दिया है यानि आख़िरत का इल्म, अल्लाह तआला की रज़ा हासिल करने का इल्म और मरने के बाद जो कुछ होगा उसका इल्म। ज़ाहिर है यह वह इल्म है जो आम आदमी अपनी समझ से हासिल नहीं कर सकता है। मरने के बाद क़ब्र में उसके साथ क्या सुलूक होगा, वह दोबारा ज़िन्दा होगा, फिर हिसाब–किताब होगा, यह सब वह बातें हैं जिनका इल्म इन्सान ख़ुद से हासिल नहीं कर सकता, इसलिए कि वह महज़ माद्दी हाल जानता है कि इन्सान मर जाता है तो सड़ जाता है और उसका जिस्म कीड़े खा जाते हैं। लेकिन इसके अलावा क्या–क्या होने वाला है वह सब चीज़ें अल्लाह के इल्म में है, उसने वह बातें अपने नबियों को बतायी हैं और नबियों ने इन्सानों को बतायी हैं। इसलिए हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने जानना चाहा जो अल्लाह ने उन्हें भी नहीं दिया बल्कि अपने किसी दूसरे बन्दे को अता फ़रमाया। उसकी ख़ातिर हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने सफ़र किया और हज़रत ख़िज़र (अलैहिस्सलाम) से मुलाक़ात और कुछ शर्तों के साथ उनके साथ रवाना हुए।

जब उन दोनों हज़रात ने अपना सफ़र शुरू किया तो राह में एक दरिया पड़ा जिसको कश्ती के ज़रिये पार करना था। दरिया में मल्लाह नाव के ज़रिये दरिया पार करा रहे थे। एक मल्लाह ने इन लोगों को देखा तो ख़्याल किया कि यह नेक लोग हैं, इसलिए उसने उनको बिला उजरत अख़लाक़न अपनी कश्ती में सवार कर लिया। उस मल्लाह की कश्ती अभी नई बनी हुई थी। वह एक ग़रीब आदमी था और उसकी कमाई का वही एक ज़रिया था। लेकिन हज़रत ख़िज़र जब उसकी कश्ती में सवार हुए तो उन्होंने उसका एक तख़्ता तोड़ दिया। ज़ाहिर है कि यह तख़्ता नीचे की तरफ़ से नहीं तोड़ा होगा वरना डूबने का ख़तरा था बल्कि उसके किसी एक कोने को मामूली सा ढीला या ऐबदार कर दिया होगा जिससे ज़्यादा से ज़्यादा पानी रिस–रिस कर आ जाए और कश्ती डूबे न, लेकिन फिर भी इतना तो ज़रूर हुआ कि वह कश्ती ख़राब हो गयी। चुनान्चे हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) से बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने कहा कि यह आपने क्या बदअख़लाकी का सबूत दिया है कि इस ग़रीब आदमी की कश्ती ही तोड़ दी। इस पर हज़रत ख़िज़र ने कहा कि यह बात आप वादे के ख़िलाफ़ कर रहे हैं जबकि आपने सब्र व ज़ब्त से काम लेने का वादा किया था। हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने कहा कि ठीक है हम अपनी ग़लती मानते हैं, हमें माफ़ कर दीजिए और अगर हम भूल जाएं तो आप हमको इस पर मुजरिम न समझियेगा।

दोनों हज़रात दरिया से पार होकर जब आगे बढ़े तो एक ऐसी जगह पहुंचे तो वहां कुछ लड़के खेल रहे थे, इन लड़कों में से एक लड़के को हज़रत ख़िज़र ने बुलाया और उसकी गर्दन इस तरह दबा दी कि वह मर गया। मुमकिन है कि हज़रत ख़िज़र ने इस तरह गर्दन दबायी हो कि किसी की निगाह न पड़ी हो और जब लड़के को तकलीफ़ हुई हो तो लोगों ने सोचा हो कि गर्दन में कोई चोट वग़ैरह लग गयी होगी। लेकिन गर्दन दबाने का असर यह ज़ाहिर हुआ कि उसकी जान चली गयी। चुनान्चे हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) से यह भी न देखा गया, और उन्होंने कहा कि आपने इस लड़के को जान से मार दिया आख़िर इस बच्चे ने आपका क्या बिगाड़ा था? इस मासूम बच्चे की तो कोई ख़ता भी न थी, बल्कि वह बिल्कुल पाकीज़ा और साफ़–सुथरा लड़का मालूम देता था। यह अमल तो आपने ऐसा किया है कि हर शख़्स इसको नापसंद करेगा। हज़रत ख़िज़्र ने कहा आपसे हमारा यह वादा हुआ था ...(शेष पेज 12 पर)

सच्चाई क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हंसने के लिए झूठ बोलने की मनाहीः हज़रत बहज़ह बिन हकीम (रज़ि0) अपने वालिद और दादा के हवाले से नक़ल करते हैं कि उन्होंने कहाः मैंने हुज़ूर (स0अ0व0) को फ़रमाते हुए सुना है कि वह शख़्स बर्बाद हो, जो लोगों को हंसाने की ख़ातिर झूठ बात करता हो, उसकी बर्बादी हो, उसकी बर्बादी हो। (अबूदाऊदः 4990)

मौजूदा दौर में लोगों को हंसाने के लिए झूठ बोलना मुस्तक़िल एक फ़न है और अब इस मैदान में बड़े–बड़े फ़नकार पैदा हो गए हैं, जिनका काम ही हंसाना होता है। मार्केट में उनके कैसेट चलते हैं और अब तो जदीद वसाएल और नेट का दौर है। उन पर ऐसी–ऐसी चीज़ें मौजूद हैं जो गोया वक़्त बर्बाद करने का एक ज़रिया हैं और उनमें लोगों को मज़ा आता है। उन फ़नकारों का काम ही आवाज़ बदलना या झूठ बोलना होता है, जिसमें फ़हाशी तक बात पहुंच जाती है। फ़हश बातें होती हैं। गोया उसमें एक ख़राबी नहीं बल्कि बहुत सी ख़राबियां होती हैं। लेकिन इस ज़माने में इसका रिवाज है और दीनदार लोग भी उसमें पड़े हुए होते हैं। अगर वह ख़ुद ऐसा नहीं करते हैं तो सुनते हैं, हालांकि ग़लत चीज़ का कहना भी ग़लत और ग़लत चीज़ का सुनना भी ग़लत। इल्ला यह कि आदमी कभी तहक़ीक़े हाल के लिए और जानने के लिए सुने कि इसमें क्या ख़राबियां हैं? इन ख़राबियों को जानने के लिए जो असहाबे तहक़ीक़ हैं और उनको जानने वाले जो बड़े उलमा हैं, वह मालूम करने की ग़रज़ से कुछ सुनें और कुछ देखें ताकि उनको इल्म हो कि यह चीज़ जायज़ है या नाजायज़ तो इस हद तक दुरुस्त है। वरना महज़ तफ़रीह के लिए सुनना दुरुस्त नहीं। वरना महज़ तफ़रीह के लिए सुनना ठीक नहीं, जैसा कि आजकल इसका बहुत रिवाज है कि लोग ऐसे लोगों की बातें सुनते हैं, उनकी कैसेटें सुनते हैं और उनका काम ही सिर्फ़ यही फ़नकारी करना होता है, जिसमें झूठ बोलना तो बुनियाद है, जब तक कि झूठ नहीं बोलेंगे, उस वक़्त तक उनकी बातों में नमक–मिर्च कहां लगेगा और चटख़ारा कहां से पैदा होगा।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने ऐसे लोगों के बारे में सख़्त कलिमात इरशाद फ़रमाए हैं, हदीस में पहली मर्तबा फ़रमायाः (ويل لـــــه) और आख़िर में दो बार फ़रमायाः (ويل له) (ويل له) ऐसे लोगों के लिए बर्बादी है और ऐसे लोगों के लिए हलाकत है जो लोगों को हंसाने के लिए बातें करते हैं और उसमें झूठ बोलते हैं।

महज़ हंसाना ग़लत नहींः इस हदीस से एक बात यह मालूम होती है कि अगर कभी हंसाने की बात की जाए या किसी का दिल ख़ुश करने के लिए कुछ कहा जाए, जिसमें झूठ न हो तो उसमें कोई हर्ज नहीं है, बल्कि हो सकता है कि कभी यह चीज़ बाइसे अज्र बन जाए। कोई बेचारा ग़मग़ीन है, कोई इख़्तिलाज में है, कोई परेशान है और आप जाकर उसका दिल ख़ुश कर दे। मज़ाक़ की ऐसी बातें कर दें कि उसका ज़हन बट जाए और उनमें कोई झूठ भी न हो और फ़हशगोई भी न हो और ग़ीबत या चुग़ली भी न हो यानि वह चीज़ें जो ममनूअ हैं, जो ज़बान की ख़राबियां हैं, वह कुछ न हों। अगर इस तरह की कोई हंसाने की बात है, कोई दिलचस्पी की बात है या किसी को ख़ुश करने के लिए अगर आदमी जाकर कुछ कहता है तो उसमें कोई हर्ज नहीं। बल्कि यह तो मतलूब है और किसी के दिल को ख़ुश करना किसी को आराम पहुंचाना एक अच्छी चीज़ है। तो अगर इसके ज़रिये से किसी का दिल ख़ुश हो रहा है, किसी को थोड़ा सा लुत्फ़ आ रहा है तो उसमें कोई हर्ज नहीं लेकिन इसमें शराएत हैं। पहली शर्त यह है कि झूठ न हो, सबसे ख़तरनाक बात यही है, ग़ीबत न हो, चुग़ली न हो, फ़हशगोई न हो, यानि वह चीज़ें जो जाएज़ नहीं हैं, वह अख़्तियार न की जाएं, तब इसमें कोई हर्ज नहीं।

मसखरापनः इस हदीस से एक और बात भी मालूम होती है कि मसखरापन को पेशा नहीं बनाना चाहिए। यह कोई अच्छी चीज़ नहीं है, क्योंकि इसके अन्दर आदमी फिर हुदूद में नहीं रह पाता। जब ज़्यादा इसको इस तरह की बातें करनी पड़े तो क्या बातें लाएगा और कहां से लाएगा, इसलिए इसको झूठ बोलना ही पड़ेगा और बात बनानी ही पड़ेगी, जिसमें यक़ीनन तजाउज़ होगा, लिहाज़ा इस अमल को मशग़ला न बनाया जाए। ताहम कभी–कभार इसमें कोई हर्ज नहीं, गोया यह नमक की तरह है। तफ़रीही बातें नमक की तरह होती हैं। अब ज़ाहिर है कि नमक नमक की तरह ही होना चाहिए। खाने में अगर नमक कोई एक प्लेट में दो–तीन चम्मचें डाल दे तो खाना ज़हर बन जाएगा यानि आदमी उसको खा नहीं सकता। मुंह में रखना मुश्किल हो जाएगा लेकिन अगर नमक न हो तो भी खाना मुश्किल होगा। पता यह चला कि नमक की ज़रूरत पड़ती है लेकिन नमक नमक की तरह होना चाहिए। अगर इसमें तजाउज़ होगा तो बात बिगड़ जाएगी।

तफ़रीही अदबः तफ़रीही बातों की तरह मुस्तक़िल तफ़रीही अदब भी होता है। हज़रत मौलाना अली मियां नदवी ने एक जगह तफ़रीही अदब के सिलसिले में लिखा है कि तफ़रीही अदब बक़द्र ज़रूरत ठीक है, वहां हज़रत मौलाना ने यह बात लिखी है कि यह नमक की तरह है, बस नमक को नमक की तरह ही होना चाहिए। खाने में बक़द्र ज़रूरत डाला जाता है, ताकि खाना मज़े का हो जाए, ज़्यादा डाल दिया जाएगा तो खाना कड़वा हो जाएगा, आदमी उसको फिर खा नहीं सकता है, इसलिए कि वह बहुत तल्ख़ हो जाएगा।

हदीस के अल्फ़ाज़ से पता चलता है कि अगर कोई शख़्स फसाने के लिए झूठ का सहारा लेता है तो बर्बादी है। गोया झूठ की बात बतौर शर्त है, लेकिन अगर कोई शख़्स यही मशग़ला अख़्तियार कर लेता है तो यह कोई बहुत अच्छी चीज़ नहीं है। इसलिए कि फिर यह सवाल क़ायम होगा कि क्या वह इस सिलसिले में एहतियात कर पाएगा। अगर एहतियात कर सकता है तो ठीक है, लेकिन ऐसा तक़रीबन नामुमकिन सा है, इसलिए मशग़ला अख़्तियार करना मुनासिब नहीं।

तफ़रीही अदब के मक़ासिदः मौजूदा दौर में बातिल को ललकारने और उसका मुक़ाबला करने के लिए ऐसी–ऐसी चीज़ें और वसाएल ईजाद हो गए हैं कि अगर हम उनको नहीं समझेंगे तो ख़तरा है कि फिर हम उनका मुक़ाबला भी नहीं कर पाएंगे, इस एतबार से ऐसा हो सकता है कि कहीं इस फ़न की ज़रूरत पड़े, इसलिए मौजूदा दौर में तफ़रीही अदब की बड़ी अहमियत है और इस पर दुनिया में मुस्तक़िल काम हो रहा है। इस वक़्त वह तफ़रीही अदब जो यूरोप और इस्लाम दुश्मन ताक़तों की तरफ़ से आ रहा है और मुख़्तलिफ़ ज़बानों में आ रहा है, हत्ता कि उर्दू में भी आ रहा है। जिसको लोग सुनते हैं और उनका ज़हन ख़राब होता है। ख़ास करके हमारे नवजवानों का ज़हन ख़राब होता है, क्योंकि वह ऐसा अदब है कि इसमें तफ़रीह भी है लेकिन तफ़रीह के साथ ज़हनसाज़ी भी है और ऐसी ज़हनसाज़ी है कि इस्लाम पर एतमाद ख़त्म होता है। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) से मुहब्बत कम होती है। दीन के बारे में आदमी के अन्दर ज़हन हल्का हो जाता है। ऐसी बातें ऐसे अंदाज़ से पेश की जाती हैं कि सीधा–साधा आदमी जब उनको सुनेगा तो उसके ज़हन में तरह–तरह के शक व शुब्हे पैदा हो जाएंगे।

सालेह तफ़रीही अदब की ज़रूरतः ज़ाहिर है ऐसे अदब का मुक़ाबला करने के लिए यक़ीनन इसकी ज़रूरत है कि तफ़रीही अदब भी होना चाहिए इसीलिए हमारे कुछ हज़रात ऐसे भी होने चाहिए जो इसका मुक़ाबला कर सकें और क़िस्सों व कहानियों में और इन जदीद शक्लों में जो इस दौर में राएज हो गयी हैं जिनमें आदमी बातें बनाता है, आवाज़ें बदलता है और सबकुछ करता है, अगर उसकी भी ज़रूरत पड़े तो ऐसा तरीक़ा अख़्तियार किया जाए कि नई नस्ल का इस्लाम पर एतमाद बहाल हो और यूरोप अपने जो अफ़कार पेश कर रहा है उन अफ़कार के नतीजे में यूरोप का जो कल्चर आम हो रहा है लोग उसकी हक़ीक़त से वाक़िफ़ हो जाएं। उसके अन्दर जो ढ़ोल का पोल है वह खुल जाए। यह काम हमारे बहुत से लोगों ने किया है। वह अपनी तफ़रीही बातों से बाज मर्तबा ज़हनसाज़ी का काम करते है, जैसे वह ज़हन को ख़राब करने का काम कर रहे हैं। इसी तरह हमारे बहुत से हज़रात हैं जो ज़हनसाज़ी का काम भी करते हैं।

निकाह के चन्द मसाएल (२)

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

निकाह के अरकानः

निकाह के दो अरकान हैंः 1– ईजाब 2– कुबूल

(हिन्दियाः 1/267, शामीः 2/285)

ईजाब क्या है?

मजलिसे अक़्द में जो कलाम में पहल करे, उसके कुबूल को ईजाब कहा जाता है, ख़्वाह शौहर इब्तिदा करे और कहेः "मैंने तुमने निकाह किया, या औरत कहे कि मैंने अपने को तेरे निकाह में दिया, या लड़की के वकील की हैसियत से क़ाज़ी कहे कि मैंने फ़लाना बिन्ते फ़लां से तुम्हारा निकाह कर दिया, या फ़लाना बिन्ते फ़लां को तुम्हारे निकाह में दिया।" (हमारे दयार का तआमिल यही है कि औरत खुद मजलिसे निकाह में नहीं आती, उसकी तरफ़ से क़ाज़ी ईजाब करता है)

(हिन्दियाः 1/267, शामीः 2/185)

कुबूल क्या है?

फिर उसके जवाब में दूसरा फ़रीक़ जो जुम्ला कहता है कि "मैंने कुबूल किया" वग़ैरह इसको जवाब कहा जाता है। (हिन्दियाः 1/267, शामीः 2/185)

ईजाब व कुबूल के सेग़ेः

ईजाब व कुबूल में अस्ल यह है कि माज़ी का सेग़ा इस्तेमाल किया जाए, जैसेः ईजाब में कहा जाए कि मैंने निकाह किया, या मैंने अपने का तुम्हारे निकाह में दिया, या मैंने फ़लाना को तुम्हारे निकाह में दिया और जवाब में कहा जाए कि मैंने कुबूल किया। उर्दू में हाल के सेग़े से ईजाब व कुबूल करते हुए अगर कहा जाए निकाह करता हूं, निकाह में देता हूं, और कुबूल करता हूं तो फ़ुक़्हा ने इससे भी निकाह के हो जाने की सराहत की है। अरबी में दोनों के मज़ारेअ का सेग़ा हो, तो चूंकि इसमें अक़्द करने के बजाए वादा–ए–अक़्द का भी एहतिमाल होता है, लिहाज़ा उससे निकाह सही नहीं होगा, लेकिन अगर एक जानिब हाल या अम्र का सेग़ा हो और दूसरी जानिब माज़ी का सेग़ा हो तो इस सूरत में भी निकाह हो जाएगा, जैसेः एक कहे कि तुम मुझसे निकाह कर लो, या क़ाज़ी कहे कि फ़लाने से निकाह कर लो और दूसरा कहे के कि मैंने कुबूल किया या "मुझे कुबूल है" तो निकाह सही माना जाएगा। (हिन्दियाः 1/270, शामीः 2/285)

ईजाब व कुबूल के लिए इत्तिहाद–ए–मजलिस शर्त हैः

ईजाब व कुबूल दोनों का एक ही मजलिस में पाया जाना शर्त है, अगर ईजाब के बाद मजलिस बदल गयी उसके बाद कुबूल किया तो निकाह सही नहीं होगा, इसीलिए अगर पैदल चलते हुए ईजाब व कुबूल किया जाए तो निकाह सही नहीं होगा, या किसी जानवर की सवारी करके चलते हुए ईजाब व कुबूल किया जाए तो मोतबर नहीं होगा और निकाह सही नहीं होगा, इसलिए कि इत्तिहादे मजलिस की शर्त नहीं पायी जा रही है, इसी पर क़यास करते हुए कहा जा सकता है कि अगर बाइक पर चलते हुए ईजाब व कुबूल किया जाए तो मोतबर नहीं होगा, अलबत्ता कश्ती को फ़ुक़्हा ने मकाने वाहिद के दर्जे में माना है, लिहाज़ा दोनों एक ही कश्ती में सवार हों और ईजाब व कुबूल करें तो निकाह मुनअक़िद हो जाएगा। शर्त यह है कि गवाह वग़ैरह जैसी बक़िया शराएत मौजूद हों। ट्रेन, हवाई जहाज़, बस और कार वग़ैरह को भी कश्ती के हुक्म में क़रार दिया गया है।

(शामीः 2/289, किताबुल मसाएलः 91–92)

गूंगे का ईजाब व कुबूलः

अगर कोई शख़्स गूंगा हो, लेकिन पढ़ना–लिखना जानता हो तो वह तहरीर के ज़रिये ईजाब व कुबूल करेगा और अगर पढ़–लिख नहीं सकता, लेकिन उसके निकाह व तलाक़ के इशारे को समझा जा सकता हो तो जब वह इशारे से इजाब व कुबूल करे तो काफ़ी होगा और निकाह हो जाएगा। (शामीः 2/461)

तहरीर से ईजाब व कुबूलः

अगर निकाहनाम पर लड़के व लड़की दोनों से दस्तख़त करा लिया, लेकिन ज़बान से ईजाब व कुबूल नहीं कराया या सिर्फ़ तहरीर में एक ने ईजाब व दूसरे ने कुबूल किया, लेकिन ज़बान से सेग़ों की अदायगी

नहीं की तो निकाह नहीं हुआ, लेकिन अगर दोनों में से कोई एक मजलिस में मौजूद न हो और वह ईजाब तहरीरी शक्ल में भेज दे, फिर ईजाब की यह तहरीर दो गवाहों के सामने पढ़ी जाए और दूसरा फ़रीक़ उसको सुनकर कुबूल कर ले तो निकाह शरअन सही हो जाएगा। (शामीः 2/288)

ईजाब व कुबूल के अल्फ़ाज़ः

लफ़्ज़ निकाह और तजवीज़ (शादी) निकाह के लिए सरीह अल्फ़ाज़ हैं, अगर उनसे ईजाब करते हुए कहा जाए कि मैंने फ़लां से निकाह किया, या शादी की तो बिलइत्तिफ़ाक़ निकाह सही होगा। अहनाफ़ के नज़दीक कुछ ऐसे किनाई अल्फ़ाज़ से भी निकाह सही हो जाता है जिनसे फ़ौरी मिल्कियत साबित नहीं होती हो, जैसेः औरत कहेः "मैंने अपनी ज़ात तुमको हिबा की, या मैंने तुमको इसका मालिक बना दिया, या तुम्हारे हाथ इसको फ़रोख़्त कर दिया, या सदक़ा कर दिया और शौहर कहे कि मैंने कुबूल कर लिया तो निकाह हो जाएगा, इसके बरख़िलाफ़ जिनसे मिल्कियत ही न साबित होती हो, मैंने अपनी ज़ात तुमको आरियत या किराये पर दी, फ़ौरी मिल्कियत न साबित होती हो जैसे कहेः "मैंने तुम्हारे लिए अपनी ज़ात को वसीयत की तो निकाह नहीं होगा।"

(शामीः 2/290)

कुबूल के अल्फ़ाज़ में तीन मर्तबा कहलाना और कलिमा पढ़वानाः

बाज़ लोग यह समझते हैं कि जब तक तीन बार ईजाब न कराया जाए, निकाह ही नहीं होगा, तो इस तरह की बात किताब व सुन्नत और फ़िक़्ह की किताबों से साबित नहीं है, सिर्फ़ एक बार ईजाब कराना काफ़ी होता है। (शामीः 2/285)

इसी तरह कुछ इलाक़ों में यह ज़रूरी समझा जाता है कि निकाह से पहले शौहर से कलिमा पढ़वाया जाए, गालिबन उसकी शुरूआत इस तरह हुई होगी कि किसी के इस्लाम में शक रहा होगा, निकाह पढ़ाने वाले ने इहतियातन उसका निकाह पढ़ाते वक़्त कलिमा पढ़ा दिया होगा, अब उसका इल्तिज़ाम इस क़द्र हो गया है कि कोई काज़ी कलिमा नहीं पढ़वाए तो बहुत से लोग कहने लगते हैं कि निकाह नहीं हुआ है। किताबें में भी कहीं इसको ज़रूरी नहीं करार दिया गया है। (शामीः 2/285)

कुछ लोग इन दोनों मसलों पर बरेलवी देवबन्दी मसलकों का इख़्तिलाफ़ समझते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है, बरेलवी उलमा ने भी इन चीज़ों को लाज़िम नहीं क़रार दिया है। (देखिएः मुफ़्ती अब्दुल कय्यूम हज़ारवी का आन लाइन फ़तवा और फ़तावा रिज़विया)

अक़्दे निकाह का तरीक़ाः बर्रे सग़ीर हिन्द व पाक में उमूमी तौर से निकाह इस तरह किया जाता है कि पहले लड़की से इजाज़त लेने जाते हैं, जाने से पहले एक को वकील क़रार दिया जाता है और दो अफ़राद गवाह की हैसियत से होते हैं, ज़्यादातर जगहों पर क़ाज़ी भी उनके साथ लड़की के पास जाता है और उससे इजाज़त लेकर मजलिसे निकाह में आता है, फिर क़ाज़ी खुत्बा पढ़ता है, उसके बाद लड़के को मुख़ातिब करके कहता है कि मैंने तुम्हारा निकाह फ़लां बिन्ते फ़लां से इतने–इतने मेहर पर करवाया, या उसको तुम्हारे निकाह में दिया और शौहर कुबूल कर लेता है, इस तरह अक़्दे निकाह मुकम्मल हो जाता है, इस तरह यहां आम तौर पर मजलिसे निकाह में लड़का अस्लन मौजूद होता है और लड़की वकालतन मौजूद होती है, फ़ि जुम्ला यह मुतदाविल तरीक़ा ठीक है, अलबत्ता लड़की की इजाज़त लेने महरम को जाना चाहिए, इसकी तफ़सील हम आगे बता रहे हैं।

(शामीः 2/324)

कोर्ट मैरिज का हुक्मः

अगर सरकारी अदालत में दो गवाहों की मौजूदगी में बाक़ायदा ईजाब व कुबूल कराया जाए तो शरअन निकाह हो जाएगा, चाहे खुत्बा न भी पढ़ाया जाए, लेकिन अगर सिर्फ़ काग़ज़ी कार्यवाही की गयी और ईजाब व कूबूल नहीं कराया गया तो शरअन निकाह मोतबर नहीं होगा। (शामीः 2/288)

खुफ़िया निकाह के बाद उमूमी निकाहः

बहुत से लोग घरवालों की रज़ामन्दी न मिलने पर ख़ुफ़िया निकाह कर लेते हैं, बाद में घरवाले राज़ी हो जाते हैं तो वह चाहते हैं कि ख़ुफ़िया निकाह का मामला खुलने न पाए ..... (शेष पेज 15 पर)

हज व उमरा – इस्लामी पहचान

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

हज क़स्द करने को कहते हैं। हज करने वाला अल्लाह के घर का क़स्द करता है, इसलिए उसका शरई नाम ही हज पड़ गया। हज के लिए जाने वाला काबा को देखने का शौक़ रखता है फिर तवाफ़–ए–क़दमू करता है, फिर अरफ़ात से वापसी के बाद दसवें दिन तवाफ़–ए–अफ़ाज़ा करता है। फिर रुख़्सत होने से पहले तवाफ़े विदा करता है। इस दौरान गाहे–बगाहे मुख़्तलिफ़ अवक़ात में मज़ीद नफ़िल तवाफ़ करता है। गोया वह लगातार काबातुल्लाह का कस्द करता है। इसलिए इस रुक्न ही हो हज कहा गया, इसके अलावा एक मर्तबा ज़ियारते काबा के बाद इसके शौक़ में और इज़ाफ़ा होता है। वह बार–बार वहां हाज़िर होने का क़स्द रखता है। इन तमाम कैफ़ियात को अदा करने के लिए हज्ज से बेहतर कोई लफ़्ज़ नहीं हो सकता था।

उमरा अरबी का लफ़्ज़ है। उमरा का मतलब आबाद करने का है और हर उमरा करने वाला अल्लाह के घर को इबादत से आबाद करता है। इसलिए उसे उमरा कहा गया है। उमरा करने वाला भी काबातुल्लाह के ताल्लुक़ से हाजी से मिलती–जुलती कैफ़ियात रखता है। वह भी अल्लाह के घर का क़स्द करता है और बार–बार उसका तवाफ़ करता है, इसलिए इस इबादत को उमरा कहा गया।

हज व उमरा और उसके वह आमाल जो उन इबादात के साथ ख़ास हैं, वह शआएरुल्लाह या शआएरे इस्लाम में शामिल हैं। शरअन अल्लाह की इताअत को बतलाने वाली नुमाया निशानियों को शआएर कहा जाता है। कुर्बानी के जानवर अल्लाह के शआएर हैं यानि अल्लाह का कुर्ब पाने की नुमायां अलामते हैं। हज के दिनों में इनको ज़िबह करने से ख़ास कुर्ब नसीब होता है। हज के शआएर से मुराद वह नुमायां मक़ामात हैं जहां आमाले हज अंजाम दिये जाते हैं। हज के शआएर हक़ीक़त में शआएरुल्लाह का एक हिस्सा हैं। किसी मज़हब पर रोशनी डालने वाली बुनियादी निशानियों को शआएर कहा जाएगा। इस लिहाज़ से तमाम अरकाने दीन यानि नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात, सब शआएरुल इस्लाम कहलाएंगी। जिन इबादात व मक़ामात को बुनियादी मज़हबी हैसियत हासिल है, वह सब शआएर हैं। जैसे मस्जिदे, अज़ाने, वुज़ू वग़ैरह। हर इदारा अपनी ख़ास पहचान के लिए जो लिबास या निशानात तैयार करता है वह इस इदारे के लिए शआएर हैं। सफ़ा–मरवा को अल्लाह तआला ने अपना शआएर कहा है। इरशाद है:

"बेशक सफ़ा व मरवा अल्लाह के शआएर हैं। लिहाज़ा जो बैतुल्लाह का हज करे या उमरा अदा करे उस पर इन दोनो का चक्कर लगाने में कोई हर्ज नहीं है और जो अपनी खुशी से ख़ैर का काम करेगा तो अल्लाह तआला निहायत क़द्र दान व सबकुछ जानने वाला है" (सूरह बक़राः 158)

इसका मतलब यही है कि यह हज के वह नुमायां निशानात हैं, जिनसे बाज़ ख़ास आमाले हज वाबस्ता कर दिये गए हैं। लिहाज़ा यह शआएरे हज हैं। फिर शआएरे इस्लाम भी हैं और सबसे बढ़कर अस्ल बुनियाद के लिहाज़ से शआएरुल्लाह हैं। सफ़ा व मरवा के दरमियान सई मुस्तक़िल इबादत नहीं है बल्कि हज और उमरा का रुक्न होने की हैसियत से इबाद है। जबकि काबा का तवाफ़ हज व उमरा का रुक्न होने के साथ मुस्तक़िल इबादत है।

सई व मशरूअ करने की मशहूर वजह यह बतायी जाती है कि हज़रत हाजरा अपने दूध पीते बच्चे हज़रत इस्माईल की प्यास और ख़ुद अपनी प्यास से परेशान हुईं तो सफ़ा व मरवा के दरमियान मुस्तक़िल चक्कर काटने लगीं ताकि पहाड़ी पर चढ़कर दूर तक नज़र दौड़ाएं कि कोई क़ाफ़िल हो तो उससे मदद हासिल की जाए। अल्लाह को यह अदा इस क़द्र पसंद आयी कि हज़रत जिब्राईल के ज़रिये हज़रत इस्माईल के क़रीब

ही एक चश्मा जारी कर दिया जो बाद में ज़मज़म के नाम से मशहूर हुआ और हज़रत हाजरा की इस दौड़–धूप को हज व उमरे की एक अहम इबादत बनाया। इस सई से यह पैग़ाम दिया गया कि कोशिश करने वालों को फल ज़रूर मिलता है। या तो उसी कोशिश को सबब बनाया जाता है या उस कोशिश की बुनियाद पर किसी और तरीक़े से नतीजा बरामद किया जाता है। इस उम्मत को मिल्लते इब्राहीमी की अमानत सुपुर्द कर दी गयी तो इन आयात के ज़रिये जद्दोजहद करने का भी सबक़ सिखाया गया। ख़ुद कुरआने करीम ने सफ़हे इब्राहीम व मूसा के हवाले से यह बताया गया कि कोशिश करने वाले की मेहनत राएगा नहीं जाती। क्या इन्सान को मालूम नहीं कि मूसा और इब्राहीम के सहीफ़ों में क्या लिखा है। वह इब्राहीम जिसने वफ़ा का हक़ अदा कर दिया, यह लिखा है कि कोई बोझ उठाने वाला दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा और यह कि इन्सान को वही मिलेगा जिसकी उसने कोशिश की। और यह कि उसकी कोशिश अनक़रीब देखी जाएगी फिर उसे उस कोशिश का भरपूर बदला मिलेगा।

हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम की क़ौम ने अपने असलाफ़ को अपने लिए बाइसे निजात समझा था। वह ग़लतफ़हमी दूर की गयी और हज़रत इब्राहीम से ताल्लुक़ रखने वाली उनकी औलाद ने महज़ इब्राहीमी निस्बत को काफ़ी समझ लिया था। इस ग़लतफ़हमी का भी ख़ात्मा कर दिया गया। उम्मते मुस्लिमा को इसकी हिदायत है कि अपनी मेहनत से अपना मक़ाम बनाएं। किसी के भरोसे से नहीं।

मज़कूरा आयत में कहा गया है कि जो शख़्स भी ख़ुशी–ख़ुशी नेकियां करेगा वह अल्लाह को आमाल का बड़ा क़द्र दां पायेगा। अल्लाह भूलता नहीं है। वह अलीम भी है और क़द्र दां भी है। नेकी से बाज़ रहने की दो ही वजहें हो सकती है। एक यह कि जिसके साथ हम नेकी कर रहे हैं उसे वह नेकी याद ही न रहे तो उस नेकी का क्या फ़ायदा, दूसरे यह कि फ़लां के नज़दीक नेकी की कोई क़द्र ही नहीं लिहाज़ा नेकी क्यों की जाए, इसलिए आयत में ख़ालिक़–ए–फ़ितरत अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने अपनी इन्हीं सिफ़ात को उजागर किया है, जिनका ताल्लुक़ नेकी क़ुबूलियत और उसे याद रखने की है।

शेषः हज़रत मूसा व ख़िज़र (अलैहिस्सलाम) का सफ़र

.... कि आप हमारे अमल में दख़ल नहीं देंगे, मगर आप सब्र से काम नहीं ले रहे हैं, फ़ौरन सवाल खड़ा कर देते हैं, लिहाज़ा अब अगर आइन्दा सब्र से काम नहीं लिया तो फिर हम लोग एक साथ सफ़र नहीं कर सकेंगे, इसलिए कि जब हमारे हर अमल से आपको तकलीफ़ पहुंच रही है तो फिर हमारे साथ रहने का कोई फ़ायदा नहीं है।

हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) ने कहा कि अब अगर मैं आपसे इसके बाद सवाल करूं तो यक़ीनन मुझे आप अपने साथ न रखें। तब तो मेरे सिलसिले में आपके पास वाक़ई उज़्र हो जाएगा कि हमने आपसे सब्र व ज़ब्त का वादा करने के बावजूद भी इसकी ख़िलाफ़ वर्ज़ी की लिहाज़ा हमारा–आपका साथ ख़त्म हो जाएगा, इसलिए कि वाक़ई हमसे वादा ख़िलाफ़ी हुई है।

यह दोनों हज़रात सफ़र के दौरान एक बस्ती में जाकर ठहरे। सफ़र की वजह से थकान थी और भूख का भी तक़ाज़ा लेकिन इस बस्ती के लोगों ने उनकी ज़ियाफ़त नहीं की जबकि क़दीम ज़माने में रिवाज था कि अगर बस्ती में कोई मेहमान आ जाता तो वहां के लोग उसको अपनी ज़िम्मेदारी समझते थे, उसकी ख़ैरियत पूछते और उसके खाने–पीने का बंदोबस्त करते। लेकिन यह लोग जिस बस्ती में ठहरे थे उनसे किसी ने खाने वग़ैरह के लिए नहीं पूछा और यह लोग भूखे ही रहे। उसी दौरान उनकी निगाह अपने सामने एक ऐसी दीवार पर पड़ी जो ख़ासी झुक गयी थी और डर था कहीं गिर न जाए, चुनान्चे हज़रत ख़िज़्र फ़ौरन उठे और नये सिरे से दीवार को सीधा कर दिया।

हज़रत मूसा (अलैहिस्सलाम) को इस अमल पर भी ताज्जुब हुआ और कहा कि यह तो बहुत ख़ूब हुआ, बस्ती वालों ने हमसे खाने तक को नहीं पूछा और हमारे साथ ज़रा भी अख़लाक़ नहीं बरता, लेकिन आप उनके साथ यह सुलूक कर रहे हैं। यह तो अजीब बात हुई और अगर आपको यह सुलूक करना ही था तो यह शक्ल भी मुमकिन थी कि आप उनसे इस अमल की उजरत ले लेते ताकि हमें उसके बदले खाना नसीब हो जाता। इसलिए कि हमें इस वक़्त खाने की ज़रूरत थी और अगर इस अमल का मुआवज़ा मिल जाता तो हमारी परेशानी दूर हो जाती। हज़रत ख़िज़्र ने कहा कि अब बस करें आप हमारे साथ सब्र से काम नहीं ले सकते, आपके और हमारे दरमियान जुदाई की यही मंज़िल है, क्योंकि आप मुसलसल वादा ख़िलाफ़ी कर रहे हैं।

ईदुल अज़्हा के मुतफ़र्रिक़ मसले

क़ुर्बानी किस पर वाजिब है:

क़ुर्बानी हर उस मुसलमान मर्द व औरत मुक़ीम पर वाजिब है जिसके पास क़ुर्बानी के दिनों क़र्ज़ वज़अ करने के बाद निसाब के बराबर सोना या चांदी की क़ीमत हो। जो हवाएजे अस्लिया मसलन रहने के घर और सवारी करने के असबाब वग़ैरह से ज़ाएद हो। क़ुर्बानी का निसाब सदक़ा–ए–फ़ित्र के निसाब की तरह होता है। ज़कात के निसाब की तरह नहीं होता। इसीलिए क़ुर्बानी वाजिब होने के लिए न साल गुज़रना शर्त है, न माल में नमू होना। अगर इन दिनों किसी के पास साढ़े सात तोला तक़रीबन सत्तासी ग्राम सोना या साढ़े बावन तोला तक़रीबन छ सौ बारह ग्राम चांदी या इतनी चांदी के बराबर रुपये या कोई फ़ालतू सामान मसलन रहने के घर के अलावा ज़ायद घर है जिसकी क़ीमत साढ़े बावन तोला चांदी या उससे ज़्यादा है तो उस पर क़ुर्बानी वाजिब हो जाएगी, जबकि ज़कात उस वक़्त फ़र्ज़ होती है जब माल पर साल गुज़र जाए उसी तरह ग़ैर नामी असबाब जैसे घर पर भी ज़कात वाजिब नहीं होती, ख़्वाह वह रहाएशी ज़रूरियात से ज़ायद ही क्यों न हो।

किन जानवरों की क़ुर्बानी जाएज़ है:

क़ुर्बानी में सिर्फ़ तीन जिन्स के जानवर तय कर दिये गये हैं।

1– बकरा–बकरी और उसी की जिन्स जैसे भेड़ या दुम्बा वग़ैरह। यह जानवर सिर्फ़ एक की तरफ़ से किफ़ायत करते हैं। इनकी क़ुर्बानी का ज़िक्र कई हदीसों में आया है। मसलन एक हदीस में है हज़रत अनस फ़रमाते हैं कि नबी करीम (स0अ0व0) ने दो सींगों वाले सियाह व सफ़ेद रंग के बकरों की क़ुर्बानी की। (मुत्तफ़क़ अलैह)

2– गाय और उसकी जिन्स मसलन भैंस जिसकी क़ुर्बानी सात लोगों की तरफ़ से हो सकती है।

3– ऊंट की जिन्स जिसकी क़ुर्बानी भी सात लोगों की तरफ़ से हो सकती है। गाय और ऊंट की क़ुर्बानी जाएज़ होने और सात लोगों की तरफ़ से काफ़ी होने का ज़िक्र भी कई हदीसों में आया है। मसलन हज़रत जाबिर (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः गाय सात अफ़राद की तरफ़ और ऊंट सात अफ़राद की तरफ़ से किफ़ायत करेंगे।

इन जानवरों के अलावा किसी और जानवर मसलन हिरन, नीलगाय वग़ैरह की क़ुर्बानी दुरुस्त नहीं होगी चाहे फ़ालतू ही क्यों न हों।

जानवरों की उम्रें:

क़ुर्बानी सिर्फ़ ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, दुम्बा, भेड़ (नर–मादा दोनों) की जायज़ (वैद्य) है। बक़िया जानवरों की जायज़ नहीं है। इसमें भी हदीस शरीफ़ में ये शर्त लगायी गयी कि मुसन्ना (निश्चित उम्र को पहुंच चुका हुआ) हो और किसी भी प्रकार के ऐब या कमी से ख़ाली हो। इसीलिये मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत जाबिर (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) ने फ़रमायाः "सिर्फ़ मुसन्ना की क़ुर्बानी किया करो यहाँ तक कि तुम पर तंगी हो तो भेड़, दुम्बा का छः माह का या उससे ज़्यादा का जानवर ज़िबह कर लिया करो।"

इन जानवरों में से हर एक का मुसन्ना अलग–अलग होता है। इसीलिये ऊंट का मुसन्ना वो है जो पांच साल पूरे कर चुका हो। गाय और भैंस का मुसन्ना वो है जो दो साल पूरे कर चुका हो और बकरी और भेड़ और दुम्बा का मुसन्ना वो है जो

एक साल पूरे कर चुका हो। लेकिन जैसा कि हदीस में गुज़रा है दुम्बा अगर छः माह या उससे ज़्यादा का हो तो उसकी कुर्बानी की जा सकती है।

भेड़, बकरी की कुर्बानी सिर्फ़ एक व्यक्ति की तरफ़ से हो सकती है जबकि ऊंट व गाय–भैंस इत्यादि में सात लोग शामिल हो सकते हैं लेकिन शर्त ये है कि किसी का हिस्सा सातवें हिस्से से कम न हो और सबकी नियत कुरबत (निकटता) की हो।

जानवर कैसा हो:

रसूलुल्लाह (स0अ0) ऐब (कमी) से पाक और बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी फ़रमाया करते थे और उम्मत को भी ऐबों से पाक बेहतरीन जानवरों की कुर्बानी के लिये कहा करते थे। हज़रत अली (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0) ने हमको हुक्म दिया कि जानवर की आंख, कान का जायज़ा लें और कान कटे–फटे और कान मे सूराख़ वाले जानवरों की कुर्बानी न किया करें। (अबूदाऊद, नसाई, इब्ने माजा)

अबूदाऊद, नसई और इब्ने माजा ही में हज़रत बराअ बिन आज़िब (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0) से सवाल किया गयाः "किन जानवरों की कुर्बानी से बचा जाये? आप (स0अ0) ने हाथ के इशारे से फ़रमायाः चार से! वो लंगड़ा जानवर जिसका लंगड़ापन ज़ाहिर हो। वो काना जिसका कानापन ज़ाहिर हो। ऐसा बीमार जानवर जिसकी बीमारी ज़ाहिर हो और वो लाग़र ज़िसकी हड्डियों में गूदा ही न हो।

इन जैसी हदीसों से फ़ुक़्हा (धर्मगुरूओं) ने ऐबों (कमियों) के बारे में निम्नलिखित वर्णन किया हैः

1– अंधे, काने और लंगड़े जानवर की कुर्बानी जायज़ नहीं है। उसी तरह उस बीमार और लाग़र (अत्यधिक कमज़ोर) जानवर की कुर्बानी भी ठीक नहीं जो अपने पैरों द्वारा कुर्बानी की जगह तक न जा पाये।

2– जिस जानवर की दुम तिहाई से ज़्यादा कटी हो उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है।

3– जिस जानवर के दांत बिल्कुल न हों या अक्सर न हों उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है। यही हुक्म उस जानवर का भी है जिसके कान पैदाइशी तौर पर न हों।

4– जिस जानवर की सींग पैदाइशी तौर पर न हों या बीच से टूट गये हों उसकी कुर्बानी जायज़ है लेकिन अगर सींग जड़ से उख़ड गयी हो तो असर दिमाग़ तक पहुंच जाता हैं।

5– ख़स्सी (बधिया) की कुर्बानी न केवल जायज़ बल्कि अफ़ज़ल और सुन्नत है। रसूलुल्लाह (स0अ0) से ख़स्सी की कुर्बानी करना साबित है।

कुर्बानी के दिनः

कुर्बानी के तीन दिन हैं। 10, 11 और 12 ज़िलहिज्जा। इनमें से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) पहले दिल कुर्बानी करना है। यद्यपि जहां ईद की नमाज़ जायज़ होती है वहां ईद की नमाज़ से पहले कुर्बानी करना जायज़ नहीं है। इसलिये बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत जन्दब की रिवायत है फ़रमाते हैंः

"नबी करीम (स0अ0) ने नहर के दिन (10/ज़िलहिज्जा) नमाज़ पढ़ाई। फिर ख़ुत्बा दिया फिर कुर्बानी की और इरशाद फ़रमायाः जिसने नमाज़ पढ़ने से पहले कुर्बानी की थी वो इसकी जगह दूसरी कुर्बानी करे और जिसने कुर्बानी नहीं की थी वो अल्लाह का नाम लेकर कुर्बानी करे।"

हां अगर कोई ऐसी छोटी बस्ती में रहता है जहां ईदैन और जुमे की नमाज़ दुरुस्त नहीं होती वहां तुलूअ फ़ज्र के बाद ही कुर्बानी की जा सकती है और शहर के लोग भी वहां अपना जानवर भेजर तुलूए फ़ज्र से पहले अपना जानवर कुर्बानी करा सकते हैं।

इन तीन दिनों में रात–दिन किसी वक़्त भी कुर्बानी करायी जा सकती है लेकिन सबसे अफ़ज़ल दिल पहला है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फ़ुक़्हा ने इस अंदेशे से रात में कुर्बानी करने को मकरूह क़रार दिाय है कि रोशनी कम होने के सबब कहीं ऐसा न हो कि रगें सही तौर पर कट न सकें लिहाज़ा अगर रोशनी का ऐसा माकूल नज़्म हो कि इस तरह का कोई अंदेशा न हो तो इंशाअल्लाह यह

कराहियत न होगी।

कुर्बानी का तरीक़ा:

अपनी कुर्बानी अपने हाथ से करना अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। लेकिन अगर कुर्बानी करना नहीं जानता या किसी और वजह से ख़ुद भी नहीं करना चाहता तो कम से कम ज़िबह के वक़्त खड़ा रहने का सवाब ज़रूर हासिल करे, बहुत से लोग इस वजह से मौजूद भी नहीं रहना चाहते, ये रूझान सही नहीं है।

कुर्बानी के वक़्त जो दुआंए मनकूल (रसूलुल्लाह स0अ0 से नक़ल की गयी हैं) हैं उनका पढ़ना अफ़ज़ल है लेकिन ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ ज़िबह के वक़्त "बिस्मिलिल्लाह अल्लाहु अकबर" कहना ज़रूरी है।

सुन्नत ये है कि जब जानवर ज़िबह करने के लिये क़िब्ला की तरफ़ लिटांए तो ये दुआ पढ़े:

﴿إِنِّي وَجَّهْتُ وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ حَنِيفاً وَمَا أَنَا مِنَ الْمُشْرِكِينَ ☆ قُلْ إِنَّ صَلَاتِي وَنُسُكِي وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِي لِلَّهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ لَا شَرِيكَ لَهُ وَبِذَلِكَ أُمِرْتُ وَأَنَا أَوَّلُ الْمُسْلِمِينَ﴾ اللّٰهم منك ولك"

फिर بسم الله الله اكبر कहकर ज़िबह करे।

(अहमद, अबूदाऊद)

और ज़िबह करने के बाद ये दुआ पढ़े:

"اللهم تقبله مني كما تقبلت من حبيبك محمدٍ وخليلك ابراهيم عليهما الصلاة والسلام"

कुर्बानी का गोश्त:

अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) यह है कि कुर्बानी के गोश्त के तीन हिस्से कर लें। एक हिस्सा अज़ीज़ व अक़ारिब (रिश्तेदारों व मिलने वाला) के लिये, एक फ़क़ीरों के लिये और एक अपने लिये। लेकिन ये सिर्फ़ अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। स्वयं पूरा गोश्त भी इस्तेमाल कर सकता है और पूरा हदिया (भेंट) और सदक़े (दान) में भी दे सकता है। कुर्बानी का गोश्त ग़ैर मुस्लिमों को भी दिया जा सकता है। खाल अपने इस्तेमाल में ले ये ग़रीबों को दे दे। लेकिन कुर्बानी का गोश्त या खाल अगर बेचे तो उस रुपये को ग़रीबों पर सदक़ा करना ज़रूरी हो जाता है। वल्लाहु आलम बिस्सवाब

शेष: निकाह के चन्द मसाएल (2)

और बाद में दोबारा निकाह करना चाहते है, तो अगर ज़ौजेन आक़िल–बालिग़ थे और पहला निकाह दो मुसलमान गवाहों की मोजूदगी में किया था, तो दोबारा निकाह की ज़रूरत तो नहीं थी, फिर भी अगर कर लें तो कोई हर्ज भी नहीं है। इस तरह किया तो अस्ल निकाह पहले वाला ही होगा फिर अगर दूसरे निकाह में वही मेहर मुक़र्रर किया जो पहले में मुक़र्रर किया था, तो राजेह क़ौल के मुताबिक़ सिर्फ़ एक ही मेहर वाजिब होगा और अगर पहले से बढ़ाकर दूसरा निकाह किया तो इज़ाफ़ा शुदा रक़म भी अस्ल मेहर के साथ वाजिब होगी। (शामी: 2/366)

मज़ाक़ में ईजाब व क़ुबूल:

अगर फ़रीक़ैन गवाहों की मौजूदगी में मज़ाक़–मज़ाक़ में ईजाब व क़ुबूल कर लें तो शरअन निकाह हो जाएगा, इसलिए कि हज़रत अबूहुरैरा (रज़ि0) की रिवायत है फ़रमाते हैं: रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया: तीन चीज़े ऐसी हैं जिनकी संजीदगी भी संजीदगी है और मज़ाक़ भी संजीदगी है, निकाह, तलाक़ और रुजअत। (तिरमिज़ी: 1184)

ड्रामा में किया जाने वाला निकाह:

अगरचे मज़ाक़ में किया जाने वाला निकाह निकाह हो जाता है, लेकिन अगर ड्रामे जैसी चीज़ों में लड़का और लड़की निकाह का रोल अदा करें तो निकाह नहीं होगा। जामियतुल उलूम अलइस्लामिया बिन्नौरी टाउन के फ़तावा में इसकी वजह बयान करते हुए फ़रमाते हैं:

"ड्रामें में किये जाने वाले निकाह से मक़सूद रिकार्डिंग और हिकायत होती है और देखने वालों के नज़दीक भी यह बात मारूफ़ होती है कि मक़सूद निकाह नहीं बल्कि रिकार्डिंग और हिकायत है। इसलिए कि ड्रामें में पहले ड्रामा निगार फ़र्ज़ी कहानी लिखता है और ड्रामें में काम करने वाले इस फ़र्ज़ी कहानी की अक्कासी करते हुए इसकी हिकायत करते हैं, लिहाज़ा ड्रामे में स्क्रिप्ट की नक़ल से निकाह नहीं होगा, अगरचे हक़ीक़ी नाम से भी हो।"

(फ़तावा: 14105200839)

हज़रत मौलाना अली मियाँ नदवी (रह०)

बहैसियत-ए-अरबी अदीब

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

"बिरादरम अबुल हसन! आपका सद हज़ार शुक्रिया कि आपने दोबारा मेरे अन्दर अपनी ज़ात और अपने अदब पर एतमाद बहाल कर दिया।" (शेख़ अली तन्तावी रह0)

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली नदवी दुनियाए इल्म व अदब का एक बड़ा नाम है, जिनके ज़ौक़े अदब का अरब दुनिया ने सिदक़ दिल से एतराफ़ किया है। मौलाना का ख़ानदानी माहौल अरबी ज़बान व अदब का ज़ायक़ाशनास था। इसलिए कमसिनी में ही अरबी ज़बान से मुहब्बत व शेफ़्तगी परवान चढ़ाने में इस माहौल ने अहम किरदार निभाया। फिर अरबी ज़बान की बाक़ायदा तहसील में इन्हें ऐसे बाकमाल और साहिबे तर्ज़ उदबा की सोहबत मयस्सर रही जो इंशा व लुग़त के मसाएल में सनद का दर्जा रखते थे। हज़रत मौलाना की अरबी ज़बान व अदब में रुसूख़ व ममारसत का एक बड़ा ज़रिया अरबी रसाएल व जराएद भी थे। जिनमें बुलन्द पाए इस्लामी उदबा और फ़िक्रे इस्लामी के मुमताज़ अहले क़लम के मज़ामीन शामिल व इशाअत होते थे।

अरबी ज़बान व अदब की रासिख़ तालीम का नतीजा यह हुआ कि महज़ 16 साल की उम्र में हज़रत मौलाना का फ़ैजे कलम रवां हो गया। इब्तिदा में आपने अल्लामा इक़बाल की कई नज़्मों का फ़सीह अरबी नस्र में तर्जुमा किया। 1929 ई0 को जब हज़रत मौलाना का लाहौर का पहला सफ़र हुआ तो मौलाना ने अल्लामा इक़बाल की मशहूर नज़्म (चांद) का अरबी तर्जुमा उनकी ख़िदमत में पेश किया, जिसको उन्होंने बग़ौर मुलाहिज़ा किया और बहुत पसंद फ़रमाया।

हज़रत मौलाना अली मियां (रह0) ने 1931ई0 में हज़रत सैय्यद अहमद शहीद के हालात पर मुश्तमिल एक उर्दू मज़मून का सलेस और रवां अरबी में तर्जुमा किया जिसको 1931ई0 में मशहूर मिस्री अदीब अल्लामा रशीद रज़ा ने अपने रिसाला (अलमनार) में शाया किया और उसको अलग से रिसाले की शक्ल में तबअ कराने की दरख़्वास्त भी की। हज़रत मौलाना की किसी ज़बान में यह पहली इल्मी व अदबी तख़लीक़ थी जो ज़ेवरे तबअ से आरास्ता हुई। आप लिखते हैं: मेरी उम्र उस वक़्त सोलह साल की रही होगी, यह मेरी पहली तस्नीफ़ है जो न सिर्फ़ हिन्दुस्तान बल्कि मिस्र से शाया हुई। (कारवाने ज़िन्दगी: 1/118)

हज़रत मौलाना की तर्जे इल्मी, शराफ़ते नफ़्सी और फ़िक्र अंगेज़ी के सबब आपका कारवाने अदब जुमूद व तअतल का शिकार न हुआ, बल्कि उसका दायरा–ए–असर पुख़्ता और वसीअ तर होता रहा। आपके अदब की खुसूसियत यह थी कि वह शऊरी और गहरी फ़िक्र का नतीजा और इल्म व हिकमत का सरचश्मा था, जिसमें ख़ूने जिगर की आमेज़िश के साथ इश्क़ व अमल की रूह भी मौजूद थी। आपकी तहरीरों से महज़ नस्र में शायरी हुस्न ही नहीं झलकता बल्कि वह जज़्बात की फ़रावानी, ईमानी पुख़्तगी और ज़बान की शस्तगी का भी ज़िन्दा व जावेद नमूना है। यही वजह है कि आपके दिलकश व दिलआवेज़ उस्लूबे बयान पर अहले ज़बान भी दांतो तले उंगलियां दबा लेते हैं और दिल खोलकर दाद दी। शेख़ मुहम्मद अल मजज़ूब रक़मतराज़ हैं:

(शेख़ नदवी की तहरीरों को पढ़ने के बाद ऐसा महसूस होता है कि उनकी अदबी तहरीर में ऐसा जादू है जो दूसरे मुसन्निफ़ीन की तहरीरों में नहीं मिलता) (सवानेह मुफ़क्किर–ए–इस्लाम: 495–496)

बिला शुब्हा मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली नदवी एक आलमी इस्लामी अदीब थे, जिन्होंने अपनी ईमानी फ़रासत, वसीअ फ़िक्र

और असाबते राय से इस्लामी अदब को सियासियात व इक़्तिसादियात और ज़िन्दगी के अमली शोबों से जोड़ने की कामयाब कोशिश की। इसके लिए आपने एक जामेअ निसाबे तालीम तैयार किया। अरब उलमा से मिलकर आलमी राब्ता–ए–अदबे इस्लामी के क़याम की कोशिश की और अपनी तहरीरों व तक़रीरों में भी इसकी अहमियत की तरफ़ ताउम्र तवज्जे दिलाते रहे।

हज़रत मौलाना के क़लम गहरे बार ने अहले अरब को ख़ूब नफ़ा पहुंचाया। मुअक़्क़िर अरबी रसाएल में अहले ज़बान व अहले क़लम के मज़ामीन के पहलू ब पहलू आपके मज़ामीन भी मुसलसल क़ारईन की दिलचस्पी का सामान बने रहे जिसके अलावा वह एक सौ पचास से ज़ाएद अहम फ़िक्री व अदबी तस्नीफ़ात का सरमाया भी है, जिसकी ख़ुशबू मश्रिक से मग़्रिब तक फैली हुई है। इसमें सरे फ़ेहरिस्त "माज़ा ख़सिरुल आलम बिनहितातुल मुस्लिमीन" है, जिसके मुताल्लिक़ ख़ुद अरब मुसन्निफ़ीन का यह ऐतराफ़ है कि यह बीसवीं सदी की सबसे ज़्यादा छपने वाली अरबी किताब है।

हज़रत मौलाना (रह0) का उस्लूबे निगारिश इन्तिहाई दिलनशीं, सलेस और ख़ुशआहंग है। यह हक़ीक़त है कि अगर क़ारी आपकी तहरीर पढ़ना शुरू कर दे तो ख़त्म किये बग़ैर रखना मुश्किल है। मौलाना का अरबी अदब बरजस्ता शिस्ता व रफ़्ता–ए–उस्लूब का आइनादार है, जिसका हुस्न व रानाई निगाहों को ख़ैरा नहीं करती बल्कि दिलों को मोह लेती है। आपकी तहरीरों में तबियत की जौलानी, हल्के कवाफी और मुतरादिफ़ात का इम्तिजाज़ है, जिसको फ़िक्र व नज़र की सलामती और क़ल्ब व जिगर की तहारत ने एक नुमाया रंग अता किया है। आपकी अक्सर अरबी तहरीरें व तक़रीरें धीरे–धीरे क़ारी के सर्द जज़्बात को महमेज़ देने का काम करती हैं। बतौर नमूना यह इबादत मुलाहिज़ा हो:

(यह हमारे साहिबे ईमान मुसलमान भाई अपने घर–बार, ख़वीशो तबार, नामूसो नाम, ऐशो आराम तर्क करके महज़ अल्लाह और रसूल की ख़ुशनूदी के लिए आए। हमारे लिए गौहरे नायाब लाले बेबहा के टुकड़े हैं कि सैंकड़ों बल्कि हज़ारों में से छंट कर आए है, इनकी क़द्र व मंज़िलत हम जानते हैं। हर एक नहीं पहचान सकता) (इज़ाहब्बत रीहुल ईमानः 88)

मुन्दरजा बाला इबारत हज़रत सैय्यद अहमद शहीद के क़ाफ़िले जिहाद का एक तारुफी इक़्तिबास है। जो हुस्न व रानाई से भरपूर है। नीज़ हल्के क़वानीन और मुतरादिफ़ात का जामेअ है और कुरआन व हदीस के उस्लूब से बिल्कुल हमआहंग है। बज़ाहिर यह उस्लूब बहुत आसान और जाज़िबे तबियत मालूम होता है, मगर दर हक़ीक़त ऐसा उस्लूब तवील रियाज़त का तालिब है।

हज़रत मौलाना के तर्ज़े उस्लूब में जहां कुरआन व हदीस से हम आहंगी नज़र आती है वहीं जा–बजा क़दीम अरबी मुहावरात का बरमहल और ख़ालिस अरबी सलीक़ा कलाम में ढ़ला हुआ इस्तेमाल भी मिलता है जैसेः

(काफिले हज़रत सैय्यद अहमद शहीद के वाक़्यात व हालात लिखने में जहां आपने आग़ानी के उस्लूब को अपनाने का तज़किरा किया है यानि दरमियाने कलाम में बरमहल यह मुहावरा भी रक़म कर दिया)

इस तरह जब मुजाहिदीन का यह काफ़िला बालाकोट में दर्जा–ए–शहादत से सरफ़राज़ हुआ तो इसके तज़किरा में बरजस्ता यह मुहावरा लिखा हैः

वाक़्या यह है कि ऐसे मुहावरात के इस्तेमाल का सही फ़हम और ज़ौक़ तभी पैदा हो सकता है जब इन्सान का अंदाज़ ख़ालिस अरबी हो जाए। यह ऐसे जुम्ले हैं जिनका उर्दू ज़बान में तर्जुमा आसान काम नहीं बल्कि उनका हक़ीक़ी लुत्फ़ लेने के लिए अरबी ज़बान व अदब का ज़ौक़ ज़रूरी है।

हज़रत मौलाना का नज़रिया था कि हक़ीक़ी अदब, मज़हबी हक़ाएक़ पर मुब्नी होना चाहिए ताकि वह तख़रीब के बजाए तामीर का ज़रिया बने और तर्ज़े फ़िर्क व अमल की इस्लाह करे। नीज़ अख़लाक़ व आदाब में इन्क़िलाब बरपा कर दे। उनका कहना था कि अदब को सही रुख़ पर लगाना ज़रूरी है ताकि अदब इन्तिशारे ख़्याल लज़्ज़त अंदोज़ी और नफ़्स परवरी के बजाए ख़ैर पसंदी, सलाह व तक़वा, ज़ब्ते नफ़्स और सही रहनुमाई का आला व हथियार बन सके। इसी अज़ीम मक़सद को अमलन बरोए कार लाने की ख़ातिर आपने अदब की बहुत सी किताबे तस्नीफ़ करके अपना मुस्तक़िल तरबियती कोर्स तैयार

कर दिया। अदबे अत्फ़ाल के मौजूं पर आपकी किताब अल किरातुर्राशिदा, क़ससुन्नबियीन और मुख़्तारात बिला शुब्हा अरबी ज़बान व अदब के ज़िन्दा जावेद होने का बैन सुबूत हैं। हज़रत मौलाना ने अलकिरातुर्राशिदा और क़ससुन्नबियीन में बच्चों की ज़हनी सतह मलहूज़ रखकर जिस तरह बतदरीज अरबी ज़बान व अदब से मुनासिबत का ज़ौक़ पैदा किया है, बिला शुब्हा तारीखे अदबे अरबी का वह एक गिरां क़द्र इज़ाफा है। इब्तिदा में जुम्ले छोटे और सादा हैं, बतदरीज माने मुश्किल और जुम्ले लम्बे और इबारत रवां हो जाती है। साथ ही कुरआनी अल्फ़ाज़ व आयात को भी इस अंदाज़ में पिरो दिया है कि उन्हें सबक़ का जुज़ बना दिया है। इस तरह मुतालाए कुरआन की राह हमवार कर दी है। हज़रत मौलाना की मुरत्तिब करदा किताब (मुख़्तारात) भी अदबे अरबी का बेशबहा खज़ीना है, जो नुजूले कुरआन से लेकर आख़िरी दौर तक के तमाम उदबा की फ़न्नी नस्र और अदबी सरमाया का बेहतरीन कशकोल है।

हज़रत मौलाना ने आसान अदब व सहाफ़त में भी अपनी कामयाब कोशिशों से चार चांद लगाए। आपकी यह सई पैहम इन्तिहाई संजीदगी के साथ मक़सदियत की रूह से मामूर थी। माहाना अलबासुल इस्लामी या पन्द्रह रोज़ा अर्राएद और इससे पहले अलज़िया बिला शुब्हा यह सब वह जराएद हैं जिन्होंने इस्लामी अरबी सहाफ़त की दुनिया में इन्क़िलाब बरपा कर दिया और यह सब हज़रत मौलाना की मुख़्लिसाना जद्दोजहद का ही समरा है।

ज़बान व अदब की तरवीज व तरक़्क़ी के लिए राब्ता–ए–अदबे इस्लामी का क़याम भी हज़रत मौलाना का एक अहम कारनामा है, जिसकी पहली कान्फ्रेंस लखनऊ में जनवरी 1986 ई0 को हुई थी। इसका बुनियादी मक़सद ही इस्लामी अदब की बुनियादों को मज़बूत करना और उसके फन्ने तन्क़ीद के ज़वाबित मुरत्तिब करना था। हज़रत मौलाना का मंशा था कि दुनिया भर के इस्लामी उदबा एक प्लेटफ़ार्म पर जमा हों। सबके माबैन ख़ुशगवार ताल्लुक़ात हों और बामक़सद अदब की तख़्लीख़ की राह हमवार हो। इसलिए कि हज़रत मौलाना का मानना था कि अदब पर कोई बन्दिश नहीं और न ही किसी की इजादा दारी है। अदब मज़हबी तालीमात से जुदा कोई फ़लसफ़ा नहीं है बल्कि वह मज़हब की रूह है। उनका नज़रिया था कि ईमानी शख़्सियत और पाकीज़ा सीरत और किरदार की तामीर में अदबी ताक़त का इस्तेमाल बुनियाद की हैसियत रखता है। राब्ते के एक इजलास में हज़तर मौलाना ने इस हक़ीक़त की तरफ़ खुलकर इशारा किया। अदब की न कोई क़ौमियत है, न वतनियत है, न जिन्सियत है और न वह ख़ालिस इस्तलाहात का पाबन्द है, न ख़ालिस ज़वाबित है लेकिन अजीब बात यह है कि ख़ुद अदबियों ने जिन्होंने अपनी ज़िन्दगियां अदब के लिए वक़्फ़ की और अपनी बेहतरीन सलाहियतें उसके लिये ख़ास कर दीं उन्होंने भी अदब के समन्दर को किसी आबे जू में तसव्वुर किया। अदब अदब है ख़्वाह वह किसी मज़हबी इन्सान की ज़बान से निकले, किसी पैग़म्बर की ज़बान से अदा हो, किसी आसमानी सहीफ़े में हो, उसकी शर्त यह है कि बात इस अंदाज़ से कही जाए कि दिल पर असर हो, कहने वाला मुतमईन हो कि मैंने अच्छी तरह कह दिया और सुनने वाला उससे लुत्फ़ उठाए और कुबूल करे। (दीने अदबः 38)

हज़रत मौलाना अरबी तहरीर के साथ अरबी तक़रीर के माहिर शहसवार थे। गोया वह अदब लिखते ही नहीं बोलते भी थे और उनकी ज़बान का जादू ऐसा सर चढ़कर बोलता था कि सामईन के सोये हुए जज़्बात को बेदार कर देता था। गोया आप अल्लामा इक़बाल के इस शेर की अमली तस्वीर थेः

नग़्मा–ए–हिन्दी है तो क्या, लय तू हिजाज़ी है मेरी

हज़रत मौलाना के बाज़ बरजस्ता अरबी ख़ुत्बात ज़बान व बयान की फ़साहत व बलाग़त और सलासत व रवानी में हज्जाज बिन यूसुफ़ सख़फ़ी और तारिक़ बिन ज़ियाद के फ़सीह व बलीग़ ख़ुत्बात की याद ताज़ा कर देते हैं।

हज़रत मौलाना की ज़ुबादानी व अरबी अदब की ज़ायक़ाशनासी का नतीजा था कि बिलइत्तिफ़ाक़ तमाम अरब उदबा, सलातीन व उमरा और अहले ज़ौक़ अपना क़ाफ़िला–ए–सालार समझते थे और आप बहुत से अहम आलमी मनासिब पर फ़ायज़ थे।

दुनिया में बाक़ी रहने का क़ानून

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अल्लाह तआला ने इस कायनात में जो निज़ाम जारी फ़रमाया है और जिसको दुनिया ने भी तस्लीम किया है वह बक़ाए अनफ़ा का बेलाग क़ानून है। जिस चीज़ में कोई नाफ़ेईयत या इन्सान की बक़ा व नशोनुमा और उसकी राहत व तरक़्क़ी का कोई इन्हिसार नहीं वह चीज़ बहुत जल्द अपना वजूद खो देती है। क़ुरआन मजीद ने अपने बलीग़ अंदाज़ में इस हक़ीक़त को ''झाग'' के लफ़्ज़ से ताबीर किया है।

"जहां तक झाग का ताल्लुक़ है सो वह बेकार चला जाता है, और जो चीज़ लोगों को नफ़अ बख़्श होती है वह ज़मीन में ठहर जाती है।" (सूरह रअदः 17)

बक़ाए अनफ़ा का क़ानून दुनिया की हर क़ौम के लिए है। तारीख़ के सफ़हात में ऐसी दसियों क़ौमें दफ़्न हैं जो अपने दौर में तहज़ीबी व सियासी बुलन्दी की थीं। ज़िन्दगी के हर मैदान में उन्हीं का सिक्का रवां था। लेकिन जब उनकी नाफ़ेईयत ख़त्म हो गयी तो उनका वजूद भी एक बोझ बन गया जिसे बहरहाल फ़ना के घाट उतरना था।

बक़ा का क़ानून दूसरी क़ौमों के साथ मुसलमानों के लिए भी ख़ास है। जिस तरह दुनिया के किसी भी ख़ित्ते के मुसलमान इस ख़ुदाई क़ानून से मुस्तसना नहीं, इसी तरह यह क़ानून अपनी शर्तों व नतीजों के साथ मुल्क हिन्दुस्तान में भी नाफ़िज़ है।

अगर मुसलमान इस मुल्क में मज़हबी आज़ादी के साथ रहने का इस्तहक़ाक़ चाहते हैं तो उन्हें अपनी नाफ़ेईयत को साबित करना होगा यानि उनको अपने जौहर का सुबूत देना होगा कि ज़िन्दगी की कोई ज़रूरत है जो उनके बग़ैर पूरी नहीं हो सकती है। वह रूहानियत, अख़लाक़ी बुलन्दी और ख़िदमते ख़ल्क़ के ऐसे महाज़ पर खड़े हैं कि अगर उन्हें इस महाज़ से हटा दिया गया तो ज़िन्दगी में ऐसी ख़लीज क़ायम होगी जिसको बड़ी–बड़ी हुकूमतें भी नहीं पाट सकतीं। आज ज़माना जिस ज़बान को समझता है और जिसकी क़द्र करता है वह नफ़ा की और ज़िन्दगी के इस्तहक़ाक़ की ज़बान है।

जब तक मुसलमानों ने अपने नफ़ाबख़्श होने का सुबूत दिया तब तक दुनिया ने भी उनके वजूद को अपने लिए ज़रूरी समझा, ऐसी दसियों मिसालें हैं कि लोगों ने मुसलमानों का पड़ोसी बनने को क़ीमती सरमाया समझा है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक (रह0) का वाक़्या मशहूर है कि उनका पड़ोसी एक यहूदी शख़्स था। जब उसने अपना मकान फ़रोख़्त करना चाहा तो उसकी क़ीमत दो हज़ार दीनार तय की। एक शख़्स ने कहा कि इस इलाक़े में ऐसे मकान की क़ीमत ज़्यादा से ज़्यादा एक हज़ार दीनार होनी चाहिए। उस यहूदी ने जवाब दिया कि घर की क़ीमत एक हज़ार ही है, मज़ीद एक हज़ार अब्दुल्लाह बिन मुबारक के पड़ोस की है।

आज भी बक़ाए अनफ़ा का बेलाग क़ानून इसी तरह नाफ़िज़ है और दुनिया इसको तस्लीम करती है। इसलिए दो टूक बात यही है कि मुल्क में मुसलमानों की बक़ा का एक ही रास्ता है कि वह अपनी नाफ़ेईयत को साबित करें, और यह यक़ीन दिलाएं कि अगर उनका वजूद नहीं रहा तो मुल्क में एक ऐसा ख़ला पैदा हो जाएगा जो कोई और पुर नहीं कर सकता।

मुसलमान सिर्फ़ इसलिए बाक़ी नहीं रह सकते कि वह यहां सदियों से आबाद हैं। माज़ी में उनके गिरां क़द्र कारनामे हैं या उनकी यादगारें क़ायम हैं, इस मुल्क की आज़ादी में उनका बड़ा हिस्सा है या फ़लां–फ़लां दौर में फ़लां–फ़लां हुकूमत में उनको ख़ास मराआत हासिल थीं, क्योंकि दुनिया सिर्फ

नाफ़ेईयत को देखती है, और यह वह क़ानून है जिसमें रहम की दरख़्वास्त न कभी सुनी गयी और न कभी सुनी जाएगी।

मुसलमानों के हक़ में बक़ाए अनफ़ा का क़ानून उनके दीनी व दावती जज़्बे से मरबूत है और यही जज़्बा मिल्लत की सारी सरगर्मियों और कोशिशों की बुनियाद है, जब तक ग़ैर मुस्लिमों से मामलात इस्तवार करने और उन पर बराहे रास्त असरअंदाज़ होने का जज़्बा नहीं होगा और उनको अपने वजूद की हैसियत का एहसास नहीं दिलाया जाएगा किसी भी तरह की मिल्ली व क़ौमी सरगर्मी के असरात भी ज़ाहिर नहीं होंगे।

दावती जज़्बे में अल्लाह ने बड़ी तासीर व महबूबियत रखी है। यही जज़्बा मुसलमानों के वजूद व बक़ा और उनके उरूज का ज़ामिन है। इसी जज़्बे ने उनको क़िल्लत में कसरत और बेसर व सामानी में वसाएल व ज़राए की बहुतात पर ग़ल्बा दिलाया है। इसी जज़्बे ने बाग़ी क़ौमों को राम किया, हठधर्मों को सरनिगों किया और सख़्त दिलों को भी मोम किया है।

हिन्दुस्तान की तारीख़ में मुस्लिम हुक्मरां इसी दावती जज़्बे से ख़ाली थे। उन्होंने मज़हबी मसावात की ग़ैर मामूली कोशिशें की, इस्लामी तालीमात में किसी क़दर चश्मपोशी से भी काम लिया, ग़ैरों में शादियां रचाईं, महलों में मन्दिर बनवाए, अवाम का दिल जीतने की हर मुमकिन कोशिश कर डाली लेकिन हज़ार साला दौरे किश्वरी व मज़हबी रवादारी के बावजूद ख़ुद ताजमहल की हसीन आराइशों, आलीशान मक़बरों में सोने वाले आज महज़ आसारे क़दीमा की यादगार हैं, लाल क़िले के ज़ाएरीन दीवाने आम व दीवाने ख़ास की पेशानी पर फ़िरदौसे बरीं का टीका देख सकते हैं जो अपने पेशरो आक़ाओं को आवाज़ें दे रहा है कि हज़ार बरस की हुक्मरानी के बाद भी सरज़मीने हिन्द तुम्हें अपना नहीं बना सकी, आज भी तुम उसके सीने पर एक बोझ हो और एक हमलावर, ज़ालिम व सितमगर के नाम से याद किये जाते हो।

जबकि दूसरी जानिब हज़रत ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (रह0), हज़रत मुजद्दिद अल्फ़े सानी (रह0), हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह0), हज़रत शरफ़ुद्दीन यहया मुनीरी (रह0) जैसी दसियों शख़्सियात हैं जिनके हाथों पर लाखों अफ़राद ने कलिमे इस्लाम पढ़ा हैं आज उनका सुनते ही सख़्त गीर हिन्दु ताज़ीम में सर झुका लेता है। इनके मज़ार पर हाज़िर होना, क़ब्रों पर चादरें चढ़ाना, मन्नते मांगना, इनको मुश्किल कुशा व हाजत रवा समझना एक आम सी बात हो गयी है। नफ़रत व मुहब्बत की इस कसौटी का नाम दावती जज़्बा है।

निहायत अफ़सोस की बात है कि आज मुसलमानों ने जो तर्ज़े ज़िन्दगी अख़्तियार कर रखा है इसका सीरते तैय्यबा (स.अ.व.) से कोई जोड़ नज़र नहीं आता। जिस तरह की मादि्दयत परस्ती और दुनिया तलबी में मुसलमान पड़ा हुआ है वह किसी भी तरह उनके वजूद की ज़ामिन नहीं है। यही वजह है कि मुआशरे में मुसलमानों के ख़िलाफ़ एक उमूमी ज़हनियत पनप रही है। कुछ मुसलमानों के तर्ज़े ज़िन्दगी ने, कुछ मीडियाई प्रोपगन्डे ने और कुछ सियासी मफ़ादात ने यह समझा दिया है कि मुसलमान ख़ालिस क़ौम परस्त हैं। इनको अपने मदरसों, मस्जिदों और जमातों के सिवा इन्सानियत के मसाएल से कोई सरोकार नहीं। मुल्क की तामीर व तरक़्क़ी से ज़्यादा उन्हे अपने मफ़ादात अज़ीज़ हैं। यह ज़हनियत मुसलमानों के लिए किसी बड़े ख़तरे से कम नहीं है।

सिर्फ़ इस्लाम की हक़्क़ानियत और मुसलमानों की इफ़ादियत का दावा किसी तरह मुफ़ीद नहीं क्योंकि जब तक अमली तस्वीर नहीं पेश की जाएगी दुनिया यही कहेगी कि ऐसी अच्छी–अच्छी बातें तो किताबों में भरी पड़ी हैं। अच्छी बातें करना बहुत आसान है, मगर उन बातों पर अमल करना मुश्किल है। इसलिए इस ज़हनियत को बदलने के लिए सबसे पहले अपने अन्दर तब्दीली लानी होगी। दावती सरगर्मियों से जुड़े हर फ़र्द को यह समझना होगा कि इस काम में अव्वलीन मुख़ातिब उसकी अपनी ज़ात है। उसका तर्ज़े मुआशरत, उसके मामलात और उसकी बुलन्द अख़लाक़ी ही उसकी इन्सानियत का आइना हैं। जब तक वह ज़ाती सतह पर एक मिसाली मुसलमान नहीं बनेगा तब तक वह एक कामयाब दायी भी नहीं बन सकता और दावती जज़्बे के बिना इन्सानियत की कोई भी ख़िदमत मुफ़ीद नहीं हो सकती।

हज में देरी क्यों?!

मौलाना मुफ़्ती तक़ी उस्मानी साहब

"हज अरकाने इस्लाम में से चौथा रुक्न है और साहिबे इस्तिताअत पर अल्लाह तआला ने उम्र भर में एक बार फ़र्ज़ करार दिया है और जब यह फ़र्ज़ हो जाए तो अब हुक्म यह है कि इस फ़रीज़े को जल्द से जल्द अदा किया जाए। बिला वजह हज को मुअख़्ख़र करना ठीक नहीं। आजकल हम लोगों ने हज करने के लिए अपने ऊपर बहुत सी शर्तें लगा ली हैं, जिनकी शरीअत में कोई अस्ल नहीं। मसलन जब तक मकान न बन जाए, या जब तक बेटियों की शादियां न हो जाएं उस वक़्त तक हज नहीं करना चाहिए। यह ख़्याल बिल्कुल ग़लत है। यह सोचना कि हमारे ज़िम्मे बहुत से काम है। अगर यह रक़म हम हज पर ख़र्च कर देंगे तो इन कामों के लिए रक़म कहां से आएगी, यह सब बेकार के सवालात और बेकार की सोच है। अल्लाह तआला ने हज की ख़ासियत यह रखी है कि हज अदा करने के नतीजे में आजतक कोई शख़्स मुफ़लिस नहीं हुआ। कुरआन में है कि हमने हज फ़र्ज़ किया है ताकि अपनी आंखों से वह फ़ायदे देखे जो हमने उनके लिए हज के अन्दर रखे हैं। हज के बेशुमार फ़ायदे हैं। उनका अहाता करना भी मुमकिन नहीं है। उनमें से एक फ़ायदा यह भी है कि अल्लाह तआला रिज़्क़ में बरकत अता फ़रमा देते हैं। बाज़ लोग यह समझते हैं कि जब तक हम वालिदैन को हज नहीं करा देंगे उस वक़्त तक हमारा हज करना ठीक न होगा। यह सिर्फ़ जिहालत की बात है। हर इन्सान पर उसका फ़रीज़ा अलग है। हर इन्सान अल्लाह तआला के नज़दीक़ अपने आमाल का मुकल्लफ़ है। उसको अपने आमाल की फ़िक्र करनी चाहिए। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने उस शख़्स के लिए बड़ी सख़्त वईद बयान फ़रमाई है कि जो साहिबे इस्तिताअत होने के बावजूद हज न करे। चुनान्चे आपने एक हदीस में इरशाद फ़रमाया कि जिस शख़्स पर हज फ़र्ज़ हो गया हो और फिर भी वह हज किये बिना मर जाए तो हमें उसकी कोई परवाह नहीं कि वह यहूदी होकर मरे या नसरानी होकर, लिहाज़ा यह मामला इतना मामूली नहीं है कि इन्सान हज के फ़रीज़े को टालता रहे और सोचता रहे कि जब फ़ुर्सत और मौक़ा होगा तब हज कर लेंगे।

अलबत्ता हज एक चीज़ पर मौक़ूफ़ है वह यह कि अगर किसी शख़्स पर क़र्ज़ है तो क़र्ज़ अदा करना हज पर मुक़द्दम है। क़र्ज़ अदा करने की अल्लाह तआला ने बड़ी सख़्त ताकीद फ़रमायी है कि इन्सान के ऊपर क़र्ज़ नहीं रहना चाहिए। इसके अलावा लोगों ने अपनी तरफ़ से जो काम हज पर मुक़द्दम कर रखे हैं मसलन पहले मैं अपना मकान बना लूं या पहले मकान ख़रीद लूं या पहले गाड़ी ख़रीद लू फिर जाकर हज कर लूंगा इसकी शरीअत में कोई अस्ल नहीं है। बाज़ लोग यह भी समझते हैं कि जब बुढ़ापा आ जाएगा तो उस वक़्त हज कर लेंगे। याद रखिये यह शैतानी धोखा है। ह रवह शख़्स जो बालिग़ हो जाए और उसके पास इतनी इस्तिताअत हो कि वह हज अदा कर सके तो उस पर हज फ़र्ज़ हो गया और जब हज फ़र्ज़ हो गया तो जल्द अज़ जल्द इस फ़रीज़े को अंजाम देना वाजिब है।

इस्लाही खुत्बात–(14/62-67)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 07 | July 2022 | Volume: 14

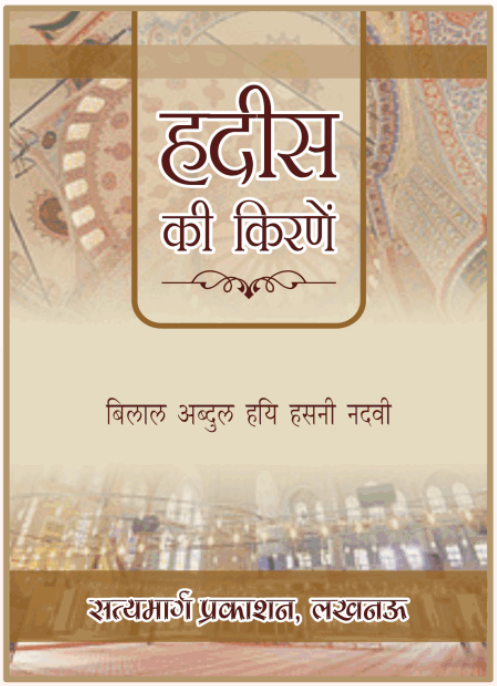

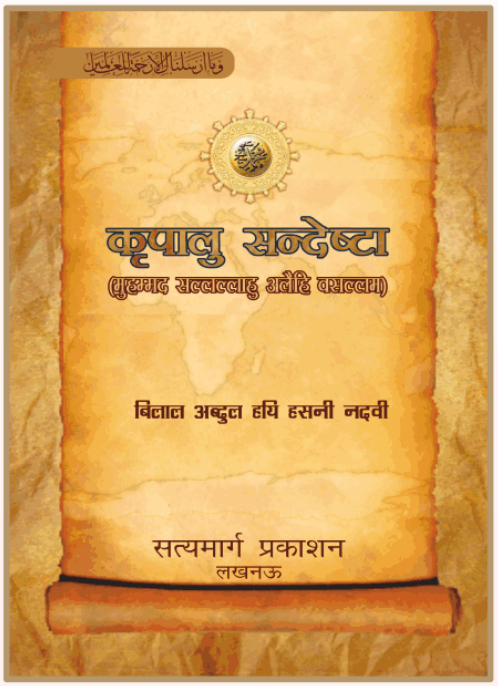

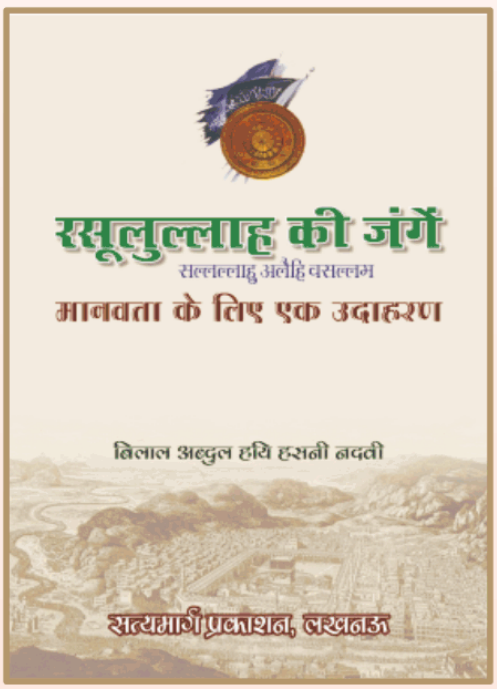

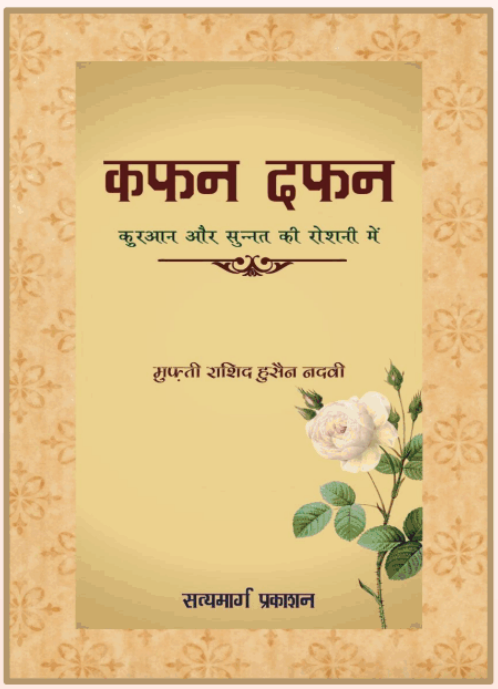

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.